श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

मूल-शब्दार्थ एवं विवेचन युक्त

हिन्दी व्याख्याकार

मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज

संपादक देवकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

[बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार]

(मूल, शब्दार्थ, विवेचन युक्त)

हिन्दी व्याख्याकार

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी

श्री मिश्रीमल जी महाराज

सम्प्रेरक

श्री सुकनमुनि

सम्पादक

देवकुमार जैन

प्रकाशक

आचार्यश्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत
पंचसंग्रह (४)
(बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार)

☐ हिन्दी व्याख्याकार
स्व० मरुधरकेसरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी महाराज

☐ संयोजक-संप्रेरक
मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

☐ सम्पादक
देवकुमार जैन

☐ प्राप्तिस्थान
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

☐ प्रथमावृत्ति
वि० सं० २०४१, पौष, जनवरी १९८५

लागत से अल्पमूल्य १०/- दस रुपया सिर्फ

☐ मुद्रण
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के निदेशन में
एन० के० प्रिंटर्स, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जनदर्शन का मर्म समझना हो तो 'कर्मसिद्धान्त' को समझना अत्यावश्यक है। कर्मसिद्धान्त का सर्वांगीण तथा प्रामाणिक विवेचन 'कर्मग्रन्थ' (छह भाग) में बहुत ही विशद रूप से हुआ है, जिनका प्रकाशन करने का गौरव हमारी समिति को प्राप्त हुआ। कर्मग्रन्थ के प्रकाशन से कर्मसाहित्य के जिज्ञासुओं को बहुत लाभ हुआ तथा अनेक क्षेत्रों से आज उनकी मांग बराबर आ रही है।

कर्मग्रन्थ की भाँति ही 'पंचसंग्रह' ग्रन्थ भी जैन कर्मसाहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें भी विस्तार पूर्वक कर्म-सिद्धान्त के समस्त अंगों का विवेचन है।

पूज्य गुरुदेव श्री मरुधरकेसरी मिश्रीमल जी महाराज जैनदर्शन के प्रौढ़ विद्वान और सुन्दर विवेचनकार थे। उनकी प्रतिभा अद्‌भुत थी, ज्ञान की तीव्र रुचि अनुकरणीय थी। समाज में ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अत्यधिक रुचि रखते थे। यह गुरुदेवश्री के विद्यानुराग का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि इतनी वृद्ध अवस्था में भी पंचसंग्रह जैसे जटिल और विशाल ग्रन्थ की व्याख्या, विवेचन एवं प्रकाशन का अद्‌भुत साहसिक निर्णय उन्होंने किया और इस कार्य को सम्पन्न करने की समस्त व्यवस्था भी करवाई।

जैनदशन एवं कर्मसिद्धान्त के विशिष्ट अभ्यासी श्री देवकुमार जी जैन ने गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन में इस ग्रन्थ का सम्पादन कर प्रस्तुत किया है। इसके प्रकाशन हेतु गुरुदेवश्री ने प्रसिद्ध साहित्य-कार श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को जिम्मेदारी सौंपी और वि० सं० २०३९ के आश्विन मास में इसका प्रकाशन-मुद्रण प्रारम्भ कर दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया। गुरुदेवश्री ने श्री सुराना जी को दायित्व सौंपते हुए फरमाया— 'मेरे शरीर का कोई भरोसा नहीं है, इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न कर लो।' उस समय यह बात सामान्य लग रही थी, किसे ज्ञात था कि गुरुदेवश्री हमें इतनी जल्दी छोड़कर चले जायेंगे। किंतु क्रूर काल की विडम्बना देखिये कि ग्रन्थ का प्रकाशन चालू ही हुआ था कि १७ जनवरी १९८४ को पूज्य गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से सर्वत्र एक स्तब्धता व रिक्तता-सी छा गई। गुरुदेव का व्यापक प्रभाव समूचे संघ पर था और उनकी दिवंगति से समूचा श्रमणसंघ ही अपूरणीय क्षति अनुभव करने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस महा काय ग्रन्थ पर इतना श्रम किया और जिसके प्रकाशन की भावना लिये ही चले गये, वह ग्रन्थ अब पूज्य गुरुदेवश्री के प्रधान शिष्य मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी महाराज के मार्गदर्शन में सम्पन्न हो रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है। श्रीयुत सुराना जी एवं श्री देवकुमार जी जैन इस ग्रन्थ के प्रकाशन-मुद्रण सम्बन्धी सभी दायित्व निभा रहे हैं और इसे शीघ्र ही पूर्ण कर पाठकों के समक्ष रखेंगे, यह दृढ़ विश्वास है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्रीमान् पुखराज जी ज्ञानचंद जी मुणोत मु० रणसीगाँव, हाल मुकाम ताम्बवरम् ने इस प्रकाशन में पूर्ण अर्थ-सहयोग प्रदान किया है, आपके अनुकरणीय सहयोग के प्रति हम सदा आभारी रहेंगे।

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान अपने कार्यक्रम में इस ग्रन्थ को प्राथमिकता देकर सम्पन्न करवाने में प्रयत्नशील है।

आशा है जिज्ञासु पाठक लाभान्वित होंगे।

मन्त्री
आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान
जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

जनदर्शन के सम्पूर्ण चिन्तन, मनन और विवेचन का आधार आत्मा है। आत्मा स्वतन्त्र शक्ति है। अपने सुख-दुःख का निर्माता भी वही है और उसका फल-भोग करने वाला भी वही है। आत्मा स्वयं में अमूर्त है, परम विशुद्ध है, किन्तु वह शरीर के साथ मूर्तिमान बनकर अशुद्धदशा में संसार में परिभ्रमण कर रहा है। स्वयं परम आनन्दस्वरूप होने पर भी सुख-दुःख के चक्र में पिस रहा है। अजर-अमर होकर भी जन्म-मृत्यु के प्रवाह में बह रहा है। आश्चर्य है कि जो आत्मा परम शक्तिसम्पन्न है, वही दीन-हीन, दुःखी, दरिद्र के रूप में संसार में यातना और कष्ट भी भोग रहा है। इसका कारण क्या है ?

जैनदर्शन इस कारण की विवेचना करते हुए कहता है—आत्मा को संसार में भटकाने वाला कर्म है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है—**कम्मं च जाई मरणस्स मूलं**। भगवान श्री महावीर का यह कथन अक्षरशः सत्य है, तथ्य है। कर्म के कारण ही यह विश्व विविध विचित्र घटनाचक्रों में प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। ईश्वरवादी दर्शनों ने इस विश्ववैचित्र्य एवं सुख-दुःख का कारण जहाँ ईश्वर को माना है, वहाँ जैनदर्शन ने समस्त सुख-दुःख एवं विश्ववैचित्र्य का कारण मूलतः जीव एवं उसका मुख्य सहायक कर्म माना है। कर्म स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नहीं है, वह स्वयं में पुद्गल है, जड़ है। किन्तु राग-द्वेष-वशवर्ती आत्मा के द्वारा कर्म किये जाने पर वे इतने बलवान और शक्तिसम्पन्न बन जाते हैं कि कर्ता को भी अपने बन्धन में बांध लेते हैं। मालिक को भी नौकर की तरह नचाते हैं। यह कर्म की बड़ी विचित्र शक्ति है। हमारे जीवन और जगत के समस्त परिवर्तनों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह मुख्य बीज कर्म क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? इसके विविध परिणाम कैसे होते हैं ? यह बड़ा ही गम्भीर विषय है। जैनदर्शन में कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमों में और उत्तर-वर्ती ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वह प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकड़ों में कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने गूँथा है, कण्ठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए वह अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थों में कर्मग्रन्थ और पंचसंग्रह इन दोनों ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें जैनदर्शन-सम्मत समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा में हैं और इनकी संस्कृत में अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। गुजराती में भी इनका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा में कर्मग्रन्थ के छह भागों का विवेचन कुछ वर्ष पूर्व ही परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन में प्रकाशित हो चुका है, सर्वत्र उनका स्वागत हुआ। पूज्य गुरुदेव श्री के मार्गदर्शन में पंचसंग्रह (दस भाग) का विवेचन भी हिन्दी भाषा में तैयार हो गया और प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया, किन्तु उनके समक्ष एक भी नहीं आ सका, यह कमी मेरे मन को खटकती रही, किन्तु निरुपाय ! अब गुरुदेवश्री की भावना के अनुसार ग्रन्थ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है, आशा है इससे सभी लाभान्वित होंगे।

—सुकनमुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

श्रीमद्देवेन्द्रसूरि विरचित कर्मग्रन्थों का सम्पादन करने के सन्दर्भ में जैन कर्मसाहित्य के विभिन्न ग्रन्थों के अवलोकन करने का प्रसंग आया। इन ग्रन्थों में श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षि महत्तरकृत 'पंचसंग्रह' प्रमुख हैं।

कर्मग्रन्थों के सम्पादन के समय यह विचार आया कि पंचसंग्रह को भी सर्वजन सुलभ, पठनीय बनाया जाये। अन्य कार्यों में लगे रहने से तत्काल तो कार्य प्रारम्भ नहीं किया जा सका। परन्तु विचार तो था ही और पाली (मारवाड़) में विराजित पूज्य गुरुदेव मरुधरकेसरी, श्रमणसूर्य श्री मिश्रीमल जी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ एवं निवेदन किया—

भन्ते ! कर्मग्रन्थों का प्रकाशन तो हो चुका है, अब इसी क्रम में पंचसंग्रह को भी प्रकाशित कराया जाये।

गुरुदेव ने फरमाया विचार प्रशस्त है और चाहता भी हूँ कि ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हों, मानसिक उत्साह होते हुए भी शारीरिक स्थिति साथ नहीं दे पाती है। तब मैंने कहा—आप आदेश दीजिये। कार्य करना ही है तो आपके आशीर्वाद से सम्पन्न होगा ही, आपश्री की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

'तथास्तु' के मांगलिक के साथ ग्रन्थ की गुरुता और गम्भीरता को सुगम बनाने हेतु अपेक्षित मानसिक श्रम को नियोजित करके कार्य प्रारम्भ कर दिया। 'शनैःकंथा' की गति से करते-करते आधे से अधिक ग्रन्थ गुरुदेव के बगड़ी सज्जनपुर चातुर्मास तक तैयार करके सेवा में उपस्थित हुआ। गुरुदेवश्री ने प्रमोदभाव व्यक्त कर फरमाया—चरैवैति-चरैवैति।

इसी बीच शिवशर्मसूरि विरचित 'कम्मपयडी' (कर्मप्रकृति) ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर मिला। इसका लाभ यह हुआ कि बहुत से जटिल माने जाने वाले स्थलों का समाधान सुगमता से होता गया :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थबोध की सुगमता के लिए ग्रन्थ के सम्पादन में पहले मूलगाथा और यथाक्रम शब्दार्थ, गाथार्थ के पश्चात् विशेषार्थ के रूप में गाथा के हार्द को स्पष्ट किया है। यथास्थान ग्रन्थान्तरों, मतान्तरों के मन्तव्यों का टिप्पण के रूप में उल्लेख किया है।

इस समस्त कार्य की सम्पन्नता पूज्य गुरुदेव के वरद आशीर्वादों का सुफल है। एतदर्थ कृतज्ञ हूँ। साथ ही मरुधरारत्न श्री रजतमुनि जी एवं मरुधराभूषण श्री सुकनमुनिजी का हार्दिक आभार मानता हूँ कि कार्य की पूर्णता के लिए प्रतिसमय प्रोत्साहन एवं प्रेरणा का पाथेय प्रदान किया।

ग्रन्थ की मूल प्रति की प्राप्ति के लिए श्री लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद के निदेशक एवं साहित्यानुरागी श्री दलसुखभाई मालवणिया का सस्नेह आभारी हूँ। साथ ही वे सभी धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने किसी न किसी रूप में अपना-अपना सहयोग दिया है।

ग्रन्थ के विवेचन में पूरी सावधानी रखी है और ध्यान रखा है कि सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता आदि न रहे एवं अन्यथा प्ररूपणा भी न हो जाये। फिर भी यदि कहीं चूक रह गई हो तो विद्वान पाठकों से निवेदन है कि प्रमादजन्य स्खलना मानकर त्रुटि का संशोधन, परिमार्जन करते हुए सूचित करें। उनका प्रयास मुझे ज्ञानवृद्धि में सहायक होगा। इसी अनुग्रह के लिए सानुरोध आग्रह है।

भावना तो यही थी कि पूज्य गुरुदेव अपनी कृति का अवलोकन करते, लेकिन सम्भव नहीं हो सका। अतः 'कालाय तस्मै नमः' के साथ-साथ विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्प्यते ।

के अनुसार उन्हीं को सादर समर्पित है।

खजांची मोहल्ला
बीकानेर, ३३४००१

विनीत
देवकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरूदेव
श्री मिश्रीमल जी महाराज

विद्याभिलाषी श्री सुकन मुनि

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

श्रमणसंघ के भीष्म-पितामह

श्रमणसूर्य स्व. गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज

स्थानकवासी जैन परम्परा के ५०० वर्षों के इतिहास में कुछ ही ऐसे गिने-चुने महापुरुष हुए हैं जिनका विराट् व्यक्तित्व अनन्त असीम नभोमण्डल की भांति व्यापक और सीमातीत रहा हो। जिनके उपकारों से न सिर्फ स्थानकवासी जैन, न सिर्फ श्वेताम्बर जैन, न सिर्फ जैन किन्तु जैन-अजैन, बालक-वृद्ध, नारी-पुरुष, श्रमण-श्रमणी सभी उपकृत हुए हैं और सब उस महान् विराट व्यक्तित्व की शीतल छाया से लाभान्वित भी हुए हैं। ऐसे ही एक आकाशीय व्यक्तित्व का नाम है— श्रमण-सूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज !

पता नहीं वे पूर्वजन्म की क्या अखूट पुण्याई लेकर आये थे कि बाल-सूर्य की भांति निरन्तर तेज-प्रताप-प्रभाव-यश और सफलता की तेज-स्विता, प्रभास्वरता से बढ़ते ही गये, किन्तु उनके जीवन की कुछ विलक्षणता यही है कि सूर्य मध्याह्न बाद क्षीण होने लगता है, किन्तु यह श्रमणसूर्य जीवन के मध्याह्नोत्तर काल में अधिक अधिक दीप्त होता रहा, ज्यों-ज्यों यौवन की नदी बुढ़ापे के सागर की ओर बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका प्रवाह तेज होता रहा, उसकी धारा विशाल और विशालतम होती गई, सीमाएं व्यापक बनती गईं, प्रभाव-प्रवाह सौ-सौ धाराएं बनकर गांव-नगर-बन-उपवन सभी को तृप्त-परितृप्त करता गया। यह सूर्य डूबने की अंतिम घड़ी, अंतिम क्षण तक तेज से दीप्त रहा, प्रभाव से प्रचण्ड रहा और उसकी किरणों का विस्तार अनन्त असीम गगन के दिक्कोणों को छूता रहा।

जैसे लड्डू का प्रत्येक दाना मीठा होता है, अंगूर का प्रत्येक अंश मधुर होता है, इसी प्रकार गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, उनकी जीवनधारा का प्रत्येक जलबिन्दु मधुर मधुरतम जीवनदायी रहा । उनके जीवन-सागर की गहराई में उतरकर गोता लगाने से गुणों की विविध बहुमूल्य मणियां हाथ लगती हैं तो अनुभव होता है, मानव जीवन का ऐसा कौन सा गुण है जो इस महापुरुष में नहीं था। उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, प्रभावशीलता, समता, क्षमता, गुणज्ञता, विद्वत्ता, कवित्वशक्ति, प्रवचनशक्ति, अदम्य साहस, अद्भुत नेतृत्वक्षमता, संघ-समाज की संरक्षणशीलता, युगचेतना को धर्म का नया बोध देने की कुशलता, न जाने कितने उदात्त गुण व्यक्तित्व सागर में छिपे थे। उनकी गणना करना असंभव नहीं तो दुःसंभव अवश्य ही है । महान तार्किक आचार्य सिद्धसेन के शब्दों में—

कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशेः

कल्पान्तकाल की पवन से उत्प्रेरित, उचालें खाकर बाहर भूमि पर गिरी समुद्र की असीम अगणित मणियां सामने दीखतीं जरूर हैं, किन्तु कोई उनकी गणना नहीं कर सकता, इसी प्रकार महापुरुषों के गुण भी दीखते हुए भी गिनती से बाहर होते हैं।

जीवन रेखाएं

श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म वि० सं० १९४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली शहर में हुआ।

पांच वर्ष की आयु में ही माता का वियोग हो गया। १३ वर्ष की अवस्था में भयंकर बीमारी का आक्रमण हुआ। उस समय श्रद्धेय गुरुदेव श्री मानमलजी म. एवं स्व. गुरुदेव श्री बुधमलजी म. ने मंगलपाठ सुनाया और चमत्कारिक प्रभाव हुआ, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। काल का ग्रास बनते-बनते बच गये।

गुरुदेव के इस अद्भुत प्रभाव को देखकर उनके प्रति हृदय की असीम श्रद्धा उमड़ आई। उनका शिष्य बनने की तीव्र उत्कंठा जग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ी। इस बीच गुरुदेवश्री मानमलजी म. का वि. सं. १९७५, माघ वदी ७ को जोधपुर में स्वर्गवास हो गया। वि. सं. १९७५ अक्षय तृतीया को पूज्य स्वामी श्री बुधमलजी महाराज के कर-कमलों से आपने दीक्षा-रत्न प्राप्त किया।

आपकी बुद्धि बड़ी विचक्षण थी। प्रतिभा और स्मरणशक्ति अद्भुत थी। छोटी उम्र में ही आगम, थोकड़े, संस्कृत, प्राकृत, गणित, ज्योतिष, काव्य, छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि विविध विषयों का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रवचनशैली की ओजस्विता और प्रभावकता देखकर लोग आपश्री के प्रति आकृष्ट होते और यों सहज ही आपका वर्चस्व, तेजस्व बढ़ता गया।

वि. सं. १९८५ पौष वदि प्रतिपदा को गुरुदेव श्री बुधमलजी म. का स्वर्गवास हो गया। अब तो पूज्य रघुनाथजी महाराज की संप्रदाय का समस्त दायित्व आपश्री के कंधों पर आ गिरा। किन्तु आपश्री तो सर्वथा सुयोग्य थे। गुरु से प्राप्त संप्रदाय-परम्परा को सदा विकासोन्मुख और प्रभावनापूर्ण ही बनाते रहे। इस दृष्टि से स्थानांगसूत्र-वर्णित चार शिष्यों (पुत्रों) में आपको अभिजात (श्रेष्ठतम) शिष्य ही कहा जायेगा, जो प्राप्त ऋद्धि-वैभव को दिन दूना रात चौगुना बढ़ाता रहता है।

वि. सं. १९९३, लोंकाशाह जयन्ती के अवसर पर आपश्री को मरुधरकेसरी पद से विभूषित किया गया। वास्तव में ही आपकी निर्भीकता और क्रान्तिकारी सिंह गर्जनाएँ इस पद की शोभा के अनुरूप ही थीं।

स्थानकवासी जैन समाज की एकता और संगठन के लिए आपश्री के भगीरथ प्रयास श्रमणसंघ के इतिहास में सदा अमर रहेंगे। समय-समय पर टूटती कड़ियां जोड़ना, संघ पर आये संकटों का दूरदर्शिता के साथ निवारण करना, संत-सतियों की आन्तरिक व्यवस्था को सुधारना, भीतर में उठती मतभेद की कटुता को दूर करना—यह आपश्री की ही क्षमता का नमूना है कि बृहत् श्रमणसंघ का निर्माण हुआ, बिखरे घटक एक हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु यह बात स्पष्ट है कि आपने संगठन और एकता के साथ कभी सौदेबाजी नहीं की। स्वयं सब कुछ होते हुए भी सदा ही पद-मोह से दूर रहे। श्रमणसंघ का पदवी-रहित नेतृत्व आपश्री ने किया और जब सभी का पद-ग्रहण के लिए आग्रह हुआ तो आपश्री ने उस नेतृत्व चादर को अपने हाथों से आचार्यसम्राट (उस समय उपाचार्य) श्री आनन्दऋषिजी महाराज को ओढ़ा दी। यह है आपश्री की त्याग व निस्पृहता की वृत्ति।

कठोर सत्य सदा कटु होता है। आपश्री प्रारम्भ से ही निर्भीक वक्ता, स्पष्ट चिन्तक और स्पष्टवादी रहे हैं। सत्य और नियम के साथ आपने कभी समझौता नहीं किया, भले ही वर्षों से साथ रहे अपने कहलाने वाले साथी भी साथ छोड़ कर चले गये, पर आपने सदा ही संगठन और सत्य का पक्ष लिया। एकता के लिए आपश्री के अगणित बलिदान श्रमणसंघ के गौरव को युग-युग तक बढ़ाते रहेंगे।

संगठन के बाद आपश्री की अभिरुचि काव्य, साहित्य, शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में बढ़ती रही है। आपश्री की बहुमुखी प्रतिभा से प्रसूत सैकड़ों काव्य, हजारों पद-छन्द आज सरस्वती के शृंगार बने हुए हैं। जैन राम यशोरसायन, जैन पांडव यशोरसायन जैसे महाकाव्यों की रचना, हजारों कवित्त, स्तवन की सर्जना आपकी काव्यप्रतिभा के बेजोड़ उदाहरण हैं। आपश्री की आशुकवि-रत्न की पदवी स्वयं में सार्थक है।

कर्मग्रन्थ (छह भाग) जैसे विशाल गुरु गम्भीर ग्रन्थ पर आपश्री के निदेशन में व्याख्या, विवेचन और प्रकाशन हुआ जो स्वयं में ही एक अनूठा कार्य है। आज जैनदर्शन और कर्मसिद्धान्त के सैकड़ों अध्येता उनसे लाभ उठा रहे हैं। आपश्री के सान्निध्य में ही पंचसंग्रह (दस भाग) जैसे विशालकाय कर्मसिद्धान्त के अतीव गहन ग्रन्थ का सम्पादन विवेचन और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है, जो वर्तमान में आपश्री की अनुपस्थिति में आपश्री के सुयोग्य शिष्य श्री सुकनमुनि जी के निदेशन में सम्पन्न हो रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन, जैन उपन्यास आदि की आपश्री की पुस्तकें भी अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। लगभग ६-७ हजार पृष्ठ से अधिक परिमाण में आप श्री का साहित्य आंका जाता है।

शिक्षा क्षेत्र में आपश्री की दूरदर्शिता जैन समाज के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध हुई है। जिस प्रकार महामना मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में एक नई क्रांति—नया दिशादर्शन देकर कुछ अमर स्थापनाएँ की हैं, स्थानकवासी जैन समाज के शिक्षा क्षेत्र में आपको भी स्थानकवासी जगत का 'मालवीय' कह सकते हैं। लोंकाशाह गुरुकुल (सादड़ी), राणावास की शिक्षा संस्थाएँ, जयतारण आदि के छात्रावास तथा अनेक स्थानों पर स्थापित पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन संस्थाएँ शिक्षा और साहित्य-सेवा के क्षेत्र में आपश्री की अमर कीर्ति गाथा गा रही हैं।

लोक-सेवा के क्षेत्र में भी मरुधरकेसरी जी महाराज भामाशाह और खेमा देदराणी की शुभ परम्पराओं को जीवित रखे हुए थे। फर्क यही है कि वे स्वयं धनपति थे, अपने धन को दान देकर उन्होंने राष्ट्र एवं समाज-सेवा की, आप एक अकिंचन श्रमण थे, अतः आपश्री ने धनपतियों को प्रेरणा, कर्तव्य-बोध और मार्गदर्शन देकर मरुधरा के गांव-गांव, नगर-नगर में सेवाभावी संस्थाओं का, सेवात्मक प्रवृत्तियों का व्यापक जाल बिछा दिया।

आपश्री की उदारता की गाथा भी सैकड़ों व्यक्तियों के मुख से सुनी जा सकती है। किन्हीं भी संत, सतियों को किसी वस्तु की, उपकरण आदि की आवश्यकता होती तो आपश्री निस्संकोच, बिना किसी भेदभाव के उनको सहयोग प्रदान करते और अनुकूल साधन-सामग्री की व्यवस्था कराते। साथ ही जहाँ भी पधारते वहाँ कोई रुग्ण, असहाय, अपाहिज, जरूरतमन्द गृहस्थ भी (भले ही वह किसी वर्ण, समाज का हो) आपश्री के चरणों में पहुंच जाता तो आपश्री उसकी दयनीयता से द्रवित हो जाते और तत्काल समाज के समर्थ व्यक्तियों द्वारा उनकी उपयुक्त व्यवस्था करा देते। इसी कारण गांव-गांव में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसान, कुम्हार, ब्राह्मण, सुनार, माली आदि सभी कौम के व्यक्ति आपश्री को राजा कर्ण का अवतार मानने लग गये और आपश्री के प्रति श्रद्धावनत रहते। यही है सच्चे संत की पहचान, जो किसी भी भेदभाव के बिना मानव मात्र की सेवा में रुचि रखे, जीव मात्र के प्रति करुणाशील रहे।

इस प्रकार त्याग, सेवा, संगठन, साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में सतत प्रवाहशील उस अजर-अमर यशोधारा में अवगाहन करने से हमें मरुधरकेसरी जी म० के व्यापक व्यक्तित्व की स्पष्ट अनुभूतियां होती हैं कि कितना विराट्, उदार, व्यापक और महान था वह व्यक्तित्व !

श्रमणसंघ और मरुधरा के उस महान संत की छत्र-छाया की हमें आज बहुत अधिक आवश्यकता थी किन्तु भाग्य की विडम्बना ही है कि विगत वर्ष १७ जनवरी, १९८४, वि० सं० २०४०, पौष सुदि १४, मंगलवार को वह दिव्यज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती हुई इस धराधाम से ऊपर उठकर अनन्त असीम में लीन हो गयी थी।

पूज्य मरुधरकेसरी जी के स्वर्गवास का उस दिन का दृश्य, शव-यात्रा में उपस्थित अगणित जनसमुद्र का चित्र आज भी लोगों की स्मृति में है और शायद शताब्दियों तक इतिहास का कीर्तिमान बनकर रहेगा। जैतारण के इतिहास में क्या, सम्भवतः राजस्थान के इतिहास में ही किसी सन्त का महाप्रयाण और उस पर इतना अपार जन-समूह (सभी कौमों और सभी वर्ण के) उपस्थित होना यह पहली घटना थी। कहते हैं, लगभग ७५ हजार की अपार जनमेदिनी से संकुल शव-यात्रा का वह जलूस लगभग ३ किलोमीटर लम्बा था, जिसमें लगभग २० हजार तो आस-पास व गांवों के किसान बंधु ही थे, जो अपने ट्रेक्टरों, बैलगाड़ियों आदि पर चढ़कर आये थे। इस प्रकार उस महा-पुरुष का जीवन जितना व्यापक और विराट रहा, उससे भी अधिक व्यापक और श्रद्धा परिपूर्ण रहा उसका महाप्रयाण !

उस दिव्य पुरुष के श्रीचरणों में शत-शत वन्दन !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमान् पुखराजजी ज्ञानचन्दजी मुणोत, ताम्बरम्(मद्रास)

संसार में उसी मनुष्य का जन्म सफल माना जाता है जो जीवन में त्याग, सेवा, संयम, दान परोपकार आदि सुकृत करके जीवन को सार्थक बनाता है। श्रीमान पुखराजजी मुणोत भी इसी प्रकार के उदार हृदय, धर्मप्रेमी गुरु भक्त और दानवीर है जिन्होंने जीवन को त्याग एवं दान दोनों धाराओं में पवित्र बनाया है।

आपका जन्म वि० सं० १९७८ कार्तिक वदी ५, रणसीगांव (पीपाड़ जोधपुर) निवासी फूलचन्दजी मुणोत के घर, धर्मशीला श्रीमती कूकी बाई के उदर से हुआ। आपके २ अन्य बन्धु व तीन बहनें भी हैं।

भाई—स्व० श्री मिश्रीमल जी मुणोत
श्री सोहनराज जी मुणोत

बहनें—श्रीमती दाकूबाई, धर्मपत्नी सायबचन्द जी गांधी, नागोर
श्रीमती तीजीबाई, धर्मपत्नी रावतमल जी गुन्देचा, हरियाड़ाणा
श्रीमती सुगनीबाई, धर्मपत्नी गंगाराम जी लूणिया, शेरगढ़

आप बारह वर्ष की आयु में ही मद्रास व्यवसाय हेतु पधार गये और सेठ श्री चन्दनमल जी सखलेचा (तिण्डीवणम्) के पास काम काज सीखा।

आपका पाणिग्रहण श्रीमान मूलचन्द जी लूणिया (शेरगढ़ निवासी) की सुपुत्री धर्मशीला, सौभाग्यशीला श्रीमती रुकमाबाई के साथ सम्पन्न हुआ। आप दोनों की ही धर्म के प्रति विशेष रुचि, दान, अतिथि-सत्कार व गुरु भक्ति में विशेष लगन रही है।

ई० सन् १९५० में आपने ताम्बरम् में स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। प्रामाणिकता के साथ परिश्रम करना और सबके साथ सद्व्यवहार रखना आपकी विशेषता है। करीब २० वर्षों से आप नियमित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक, तथा चउविहार करते हैं। चतुदर्शी का उपवास तथा मासिक आयम्बिल भी करते हैं। आपने अनेक अठाइयाँ, पंचाले, तेले आदि तपस्या भी की हैं। ताम्बरम् में जैन स्थानक एवं पाठशाला के निर्माण में आपने तन-मन-धन से सहयोग प्रदान किया। आप एस० एस० जैन एसोसियेशन ताम्बरम् के कोषाध्यक्ष हैं।

आपके सुपुत्र श्रीमान ज्ञानचन्द जी एक उत्साही कर्तव्यनिष्ठ युवक हैं। माता-पिता के भक्त तथा गुरुजनों के प्रति असीम आस्था रखते हुए, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यों में सदा सहयोग प्रदान करते है। श्रीमान ज्ञानचन्दजी की धर्मपत्नी सौ० खमाबाई (सुपुत्री श्रीमान पुखराज जी कटारिया राणावास) भी आपके सभी कार्यों में भरपूर सहयोग करती हैं।

इस प्रकार यह भाग्यशाली मुणोत परिवार स्व० गुरुदेव श्री मरुधर केशरी जी महाराज के प्रति सदा से असीम आस्थाशील रहा है। विगत मेडता (वि० सं० २०३६) चातुर्मास में श्री सूर्य मुनिजी की दीक्षा प्रसंग(आसोज सुदी १०)पर श्रीमान पुखराज जी ने गुरुदेव की उम्र के वर्षों जितनी विपुल धन राशि पंच संग्रह प्रकाशन में प्रदान करने की घोषणा की। इतनी उदारता के साथ सत् साहित्य के प्रचार-प्रसार में सांस्कृतिक रुचि का यह उदाहरण वास्तव में ही अनुकरणीय व प्रशंसनीय है। श्रीमान ज्ञानचन्द जी मुणोत की उदारता, सज्जनता और दानशीलता वस्तुतः आज के युवक समाज के समक्ष एक प्रेरणा प्रकाश है।

हम आपके उदार सहयोग के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए आपके समस्त परिवार की सुख-समृद्धि की शुभ कामना करते हैं। आप इसी प्रकार जिनशासन की प्रभावना करते रहे—यही मंगल कामना है।

मन्त्री—
पूज्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान
जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

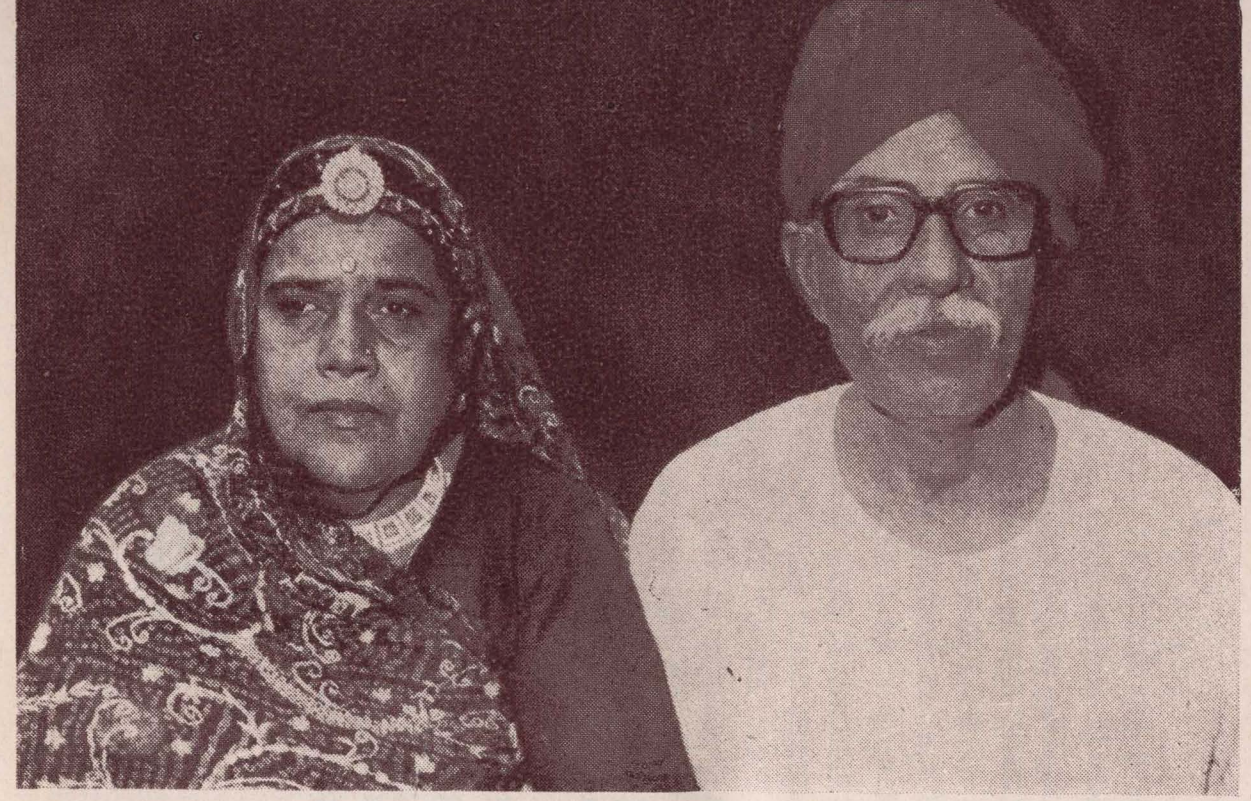

सौ० रुकमाबाई पुखराजजी मुणोत

श्रीमान पुखराजजी मुणोत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

बंधव्य क्या है ? इसका उत्तर मिल जाने पर कि कर्मरूप में परिणत हुए कार्मण वर्गणा के पुद्गल बंधव्य हैं। तब सहज ही जिज्ञासा होती है, इन कर्मों का बंध किन कारणों से होता है ? जिनका समाधान प्रस्तुत बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार का अभिधेय है।

यों तो जीव की बद्ध और मुक्त अवस्था सभी आस्तिक दर्शनों ने मानी है और अपना प्रयोजन निश्रेयस्-प्राप्ति स्वीकार किया है। लेकिन जैनदर्शन में बंध-मोक्ष की चर्चा जितनी विस्तृत और विशदता से हुई है, उतनी दर्शनान्तरों में देखने को नहीं मिलती है। संक्षेप में कहा जाये तो बंध और मोक्ष का अथ से लेकर इति तक प्रतिपादन करना ही जैनदर्शन का केन्द्रबिन्दु है। समस्त जैन वाङ्मय इसकी चर्चा से भरा पड़ा है। वहाँ, जीव क्यों और कब से बंधा है ? बद्ध जीव की कैसी अवस्था होती है ? जीव के साथ संबद्ध होने वाला वह दूसरा पदार्थ क्या है, जिसके साथ जीव का बंध होता है ? उस बंध के क्या कारण हैं ? बंध के उपादान और निमित्त कारण क्या हैं ? बंध से इस जीव का छुटकारा कैसे होता है ? बंधने के बाद उस दूसरे पदार्थ का जीव के साथ कब तक सम्बन्ध बना रहता है ? वह संबद्ध दूसरा पदार्थ जीव को अपना विपाक-वेदन किस-किस रूप में कराता है ? आदि सभी प्रश्नों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह विवेचन सयुक्तिक है, काल्पनिक अथवा विशृंखल नहीं है। प्रत्येक उत्तर की पूर्वापर से कड़ी जुड़ी हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सब प्रश्नों में भी मुख्य है बंध के कारणों का परिज्ञान होना। क्योंकि जब तक बंध के कारणों की स्पष्ट रूपरेखा ज्ञात नहीं हो जाती है तब तक सहज रूप में अन्य प्रश्नों का उत्तर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतएव उन्हीं की यहाँ कुछ चर्चा करते हैं।

ऊपर जीव की जिन दो अवस्थाओं का उल्लेख किया है, उनमें बद्ध प्रथम है और मुक्त तदुत्तरवर्ती—द्वितीय। क्योंकि जो बद्ध होगा, वही मुक्त होता है। बद्ध का अपर नाम संसारी है। इसी दृष्टि से जैनदर्शन में जीवों के संसारी और मुक्त ये दो भेद किये हैं। जो चतुर्गति और ८४ लाख योनियों में परिभ्रमण करता है, उसे संसारी और संसार से मुक्त हो गया, जन्म-मरण की परम्परा एवं उस परम्परा के कारणों से निःशेषरूपेण छूट गया, उसे मुक्त कहते हैं। ये दोनों भेद अवस्थाकृत होते हैं। पहले जीव संसारी होता है और जब वह प्रयत्नपूर्वक संसार का अन्त कर देता है, तब वही मुक्त हो जाता है। ऐसा कभी सम्भव नहीं है और न होता है कि जो पूर्व में मुक्त है वही बद्ध—संसारी हो जाये। मुक्त होने के बाद जीव पुनः संसार में नहीं आता है। क्योंकि उस समय संसार के कारणों का अभाव होने से उसमें ऐसी योग्यता ही नहीं रहती है, जिससे वह पुनः संसार के कारण–कर्मों का बंध कर सके।

कर्मबंध की योग्यता जीव में तब तक रहती है, जब तक उसमें मिथ्यात्व (अतत्त्व श्रद्धा या तत्त्वरुचि का अभाव), अविरति (त्याग रूप परिणति का अभाव), प्रमाद (आलस्य, अनवधानता), कषाय (क्रोधादि भाव) और योग (मन, वचन और काय का व्यापार—परिस्पन्दन—प्रवृत्ति) हैं। इसीलिए इनको कर्मबंध के हेतु कहा है। जब तक इनका सद्भाव पाया जाता है, तभी तक कर्मबंध होता है। इन हेतुओं के लिए यह जानना चाहिए कि पूर्व का हेतु होने पर उसके उत्तरवर्ती सभी हेतु रहेंगे एवं तदनुरूप कर्मबंध में सघनता होगी, लेकिन उत्तर के हेतु होने पर पूर्ववर्ती हेतु का अस्तित्व कादचित्क है और इन सबका अभाव हो जाने पर जीव मुक्त हो जाता है। ये मिथ्यात्व आदि जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के वे परिणाम हैं जो बद्ध दशा में होते हैं। अबद्ध/मुक्त जीव में इनका सद्भाव नहीं पाया जाता है। इससे कर्मबंध और मिथ्यात्व आदि का कार्य-कारणभाव सिद्ध होता है कि बद्ध जीव के कर्मों का निमित्त पाकर मिथ्यात्व आदि होते हैं और मिथ्यात्व आदि के निमित्त से कर्मबंध होता है। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए 'समय प्राभृत' में कहा है—

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्त पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवोवि परिणमई॥

अर्थात्—जीव के मिथ्यात्व आदि परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गलों का कर्मरूप परिणमन होता है और उन पुद्गल कर्मों के निमित्त से जीव भी मिथ्यात्व आदि रूप परिणमता है।

कर्मबंध और मिथ्यात्व आदि की यह परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। जिसको शास्त्रों में बीज और वृक्ष के दृष्टान्त से स्पष्ट किया है। इस परम्परा का अन्त किया जा सकता है किन्तु प्रारम्भ नहीं। इसी से व्यक्ति की अपेक्षा मुक्ति को सादि और संसार को अनादि कहा है।

जैनदर्शन में द्रव्यकर्म और भावकर्म के रूप में कर्म के जो दो मुख्य भेद किये हैं, वे जाति की अपेक्षा से नहीं हैं, किन्तु कार्य-कारण-भाव की अपेक्षा से किये हैं। जैसे मिथ्यात्व आदि भावकर्म ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्मों को आत्मा के साथ संबद्ध कराने के कारण हैं और द्रव्यकर्म कार्य। इसी प्रकार द्रव्यकर्म भी जीव में वैसी योग्यता उत्पन्न करने के कारण बनते हैं, जिससे जीव की मिथ्यात्वादि रूप में परिणति हो। इस प्रकार से द्रव्यकर्म में कारण और भावकर्म में कार्य-रूपता स्पष्ट हो जाती है।

द्रव्यकर्म पौद्गलिक हैं और पुद्गल अपनी स्निग्ध-रूक्षरूप श्लेष्म-योग्यता के द्वारा सजातीय पुद्गलों से संबद्ध होते रहते हैं। उनमें यह जुड़ने-बिछुड़ने की प्रक्रिया सहज रूप से अनवरत चलती रहती है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु पर-विजातीय पदार्थ से जाकर स्वयमेव जुड़ जायें, ऐसी योग्यता उनमें नहीं है। यदि उनको पर-विजातीय पदार्थ से जुड़ना है और जब उनका पर-विजातीय पदार्थ से सम्बन्ध होगा, तब उस पर-पदार्थ में भी वैसी योग्यता होना आवश्यक है जो अपने से विरुद्ध गुणधर्म वाले पदार्थ को स्वसंबद्ध कर सके। जीव के लिए कर्मपुद्गल विजातीय—पर हैं। उनको अपने साथ जोड़ने में स्वयोग्यता कार्यकारी होगी। इसीलिए कर्मबंध में मिथ्यात्व आदि की कारणरूप में मुख्यता है। बिना इन मिथ्यात्व आदि के कार्मण वर्गणा के पुद्गल कर्मरूपता को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। इसीलिए कर्मबंध में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पांच को कारणरूप में माना है। लेकिन जब हम संक्षेप और विस्तार दृष्टि से इन कारणों का विचार करते हैं तो इनमें से बंध के प्रति योग और कषाय की प्रधानता है। आगमों में योग को गरम लोहे की और कषाय को गोंद की उपमा दी है। जिस प्रकार गरम लोहे को पानी में डालने पर वह चारों ओर से पानी को खींचता है, ठीक यही स्वभाव योग का है और जिस प्रकार गोंद के कारण एक कागज दूसरे कागज से चिपक जाता है, यही स्वभाव कषाय का है। योग के कारण कर्म-परमाणुओं का आस्रव होता है और कषाय के कारण वे बंध जाते हैं। इसीलिए कर्मबंध हेतु पांच होते हुए भी उनमें योग और कषाय की प्रधानता है। प्रकृति आदि चारों प्रकार के बंध के लिए इन दो का सद्भाव अनिवार्य है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब गुणस्थान क्रमारोहण के द्वारा आत्मा की स्वभावोन्मुखी ऊर्ध्वीकरण की अवस्थाओं का ज्ञान कराया जाता है एवं कर्म के अवान्तर भेदों में से कितनी कर्मप्रकृतियाँ किस बंधहेतु से बँधती हैं, इत्यादि रूप में कर्मबंध के सामान्य बंधहेतुओं का वर्गीकरण किया जाता है, तब वे पांच प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आपेक्षिक दृष्टियों से कर्मबंध के हेतुओं की संख्या में भिन्नता रहने पर भी आशय में कोई अन्तर नहीं है।

ये कर्मबंध के सामान्य हेतु हैं, यानि इनसे सभी प्रकार के शुभ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुभ विपाकोदय वाले कर्मों का समान रूप से बंध होता है। क्योंकि इन सबका सांकल की कड़ियों की तरह एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। अतएव जब एक में प्रतिक्रिया होती है तब अन्यों में भी परिस्पन्दन होता है और उनमें जिस प्रकार का परिस्पन्दन होता है, तदनुरूप कार्मण वर्गणायें कर्मरूप से परिणत हो जीव प्रदेशों के साथ नीर-क्षीरवत् जुड़ती जाती हैं। इन सामान्य कारणों के साथ-साथ विशेष कारण भी हैं, जो तत्तत् कर्म के बंध में मुख्य रूप से एवं इतर के बंध में गौणरूप से सहकारी होते हैं। लेकिन वे विशेष कारण इन सामान्य कारणों से स्वतन्त्र नहीं हैं। उन्हें सामान्य कारणों का सहयोग अपेक्षित है। बंध के सामान्य कारणों के सद्भाव रहने तक विशेष कारण कार्यकारी हैं, अन्यथा अकिंचित्कर हैं।

इन सामान्य बंधहेतुओं के भिन्न-भिन्न प्रकार से किये जाने वाले विकल्प सकारण हैं। क्योंकि जिन सामान्य बंधहेतुओं के द्वारा कोई एक जीव किसी कर्म का बंध करता है, उसी प्रकार से उन्हीं बंध-हेतुओं के रहते दूसरा जीव वैसा बंध नहीं करता है तथा जिस सामग्री को प्राप्त करके एक जीव स्वबद्ध कर्म का वेदन करता है, उसी प्रकार की सामग्री के रहते या उसे प्राप्त करके सभी समान कर्मबंधक जीवों को वैसा ही अनुभव करना चाहिये, किन्तु वैसा दिखता नहीं है। इसके लिए हमें संसारस्थ जीव मात्र में व्याप्त विचित्रताओं एवं विषमताओं पर दृष्टिपात करना होगा।

हम अपने आस-पास देखते हैं अथवा जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है तो स्पष्ट दिखता है कि सामान्य से सभी जीवों के शरीर, इन्द्रियाँ आदि के होने पर भी उनकी आकृतियाँ समान नहीं हैं, अपितु इतनी भिन्नता है कि गणना नहीं की जा सकती है। एक की शरीर-रचना का दूसरे की रचना से मेल नहीं खाता है। उदाहरणार्थ, हम अपने मनुष्य-वर्ग को देख लें। सभी मनुष्य शरीरवान हैं, और उस शरीर में यथास्थान इन्द्रियों तथा अंग-उपांगों की रचना भी हुई है। लेकिन एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आकृति दूसरे से नहीं मिलती है। प्रत्येक के आँख, कान, हाथ, पैर आदि अंग-प्रत्यंगों की बनावट में एकरूपता नहीं है। किसी की नाक लम्बी है, किसी की चपटी, किसी के कान आगे की ओर झुके हुए हैं, किसी के यथायोग्य आकार-प्रकार वाले नहीं हैं। कोई बौना है, कोई कुबड़ा है, कोई दुबला-पतला कंकाल जैसा है, कोई पूरे डील-डौल का है। किसी के शरीर की बनावट इतनी सुघड़ है कि देखने वाले उसके सौन्दर्य का बखान करते नहीं अघाते और किसी की शारीरिक रचना इतनी विकृत है कि देखने वाले घृणा से मुँह फेर लेते हैं।

यह बात तो हुई बाह्य दृश्यमान विचित्रताओं की कि सभी की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ हैं। अब उनमें व्याप्त विषमताओं पर दृष्टिपात कर लें। विषमताओं के दो रूप हैं—बाह्य और आन्तरिक। बाहरी विषमतायें तो प्रत्यक्ष दिखती हैं कि किसी को दो समय की रोटी भी बड़ी कठिनाई से मिलती है। दिन भर परिश्रम करने के बाद भी इतना कुछ प्राप्त होता है कि किसी न किसी प्रकार से जीवित है और कोई ऐसा है जो सम्पन्नता के साथ खिलवाड़ कर रहा है। किसी के पास यान—वाहन आदि की इतनी प्रचुरता है कि दो डग भी पैदल चलने का अवसर नहीं आता, जब कि दूसरे को पैदल चलने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं। किसी के पास आवास योग्य झोंपड़ी भी नहीं है तो दूसरा बड़े-बड़े भवनों में रहते हुए भी जीवन निर्वाह योग्य सुविधाओं की कमी मानता है। किसी के पास तो तन ढाँकने के लायक वस्त्र नहीं, फटे-पुराने चिथड़े शरीर पर लपेटे हुए है और दूसरा दिन में अनेक पोशाकें बदलते हुए भी परिधानों की कमी मानता है इत्यादि।

अब आन्तरिक भावात्मक परिणतियोंगत विषमताओं पर दृष्टिपात कर लें। वे तो बाह्य से भी असंख्यगुणी हैं। जितने प्राणधारी उतनी ही उनकी भावात्मक विषमतायें, उनकी तो गणना ही नहीं की सकती है। पृथक्-पृथक् कुलों, परिवारों के व्यक्तियों को छोड़कर दो सहोदर भाइयों—एक ही माता-पिता की दो सन्तानों को देखें। उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावात्मक वृत्तियों की विषमताओं को देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। दोनों ने एक ही माता का दूध पिया है। दोनों को समान लाड़-प्यार मिला है। सत्संस्कारों के लिए योग्य शिक्षा भी मिली है। फिर भी उन दोनों की मानसिक स्थिति एक सी नहीं है, विपरीत है। एक दुष्ट दुराचारी है और दूसरा सज्जन शालीन है। एक क्रोध का द्वैपायन है तो दूसरा सम, समता, क्षमा की प्रतिमूर्ति है। इतना ही क्यों? माता-पिता शिक्षित, प्रकाण्ड विद्वान लेकिन उनकी ही सन्तान निपट गंवार, मूर्ख है। माता-पिता अशिक्षित लेकिन उनकी सन्तान ने अपनी प्रतिभा के द्वारा विश्वमानस को प्रभावित किया है इत्यादि। इस प्रकार की स्थिति क्यों हैं? तो कारण हैं इसका वे संस्कार जिनको उस व्यक्ति ने अपने पूर्वजन्म में अर्जित किये हैं। पूर्व-जन्म में अर्जित संस्कारों का ही परिणाम उन-उनकी वार्तमानिक कृति-प्रवृत्ति है। वे संस्कार उन्होंने कैसे अर्जित किये थे? तो उसके निमित्त हैं, वे हेतु जिनका मिथ्यात्व आदि के नाम से शास्त्रों में उल्लेख किया है और उनकी तरतमरूप स्थिति। उस समय कर्म करते हुए जितनी-जितनी भावात्मक परिणतियों में तरतमता रही होगी, तदनुरूप वर्त-मान में वैसी वृत्ति, प्रवृत्ति हो रही है।

बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दप्रश्न में भी प्राणिमात्र में व्याप्त विषमता के कारण के लिए इसी प्रकार का उल्लेख किया है कि अर्जित संस्कार के द्वारा ही व्यक्ति के स्वभाव, आकृति आदि में विभिन्नतायें होती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि कर्मबंध के हेतुओं के जो विकल्प–भंग शास्त्रों में बताये हैं वे भंग काल्पनिक अथवा बौद्धिक व्यायाम मात्र नहीं हैं, किन्तु यथार्थ हैं और इनकी यथार्थता प्राणिमात्र में, व्याप्त विचित्रता और विषमता से स्वतः सिद्ध है। विचित्रतायें विषमतायें कार्य हैं और कार्य में भिन्नतायें तभी आती हैं जब कारणों की भिन्न-तायें हों।

कर्मबंध के हेतुओं की अधिकता होने पर व्यक्ति के भावों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संक्लेश, माया, वंचना, धूर्तता की अधिकता दिखती है और न्यूनता होने पर भावों में विशुद्धता का स्तर उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। इसको एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है— कोई एक लम्पट, धूर्त, कामी व्यक्ति जघन्यतम कृत्यों को करके भी दूसरों पर दोषारोपण करने से नहीं झिझकता है। उसका स्वार्थ प्रबल होता है कि अपने अल्प लाभ के लिये दूसरों के नुकसान को नहीं देखता है। विषभरे स्वर्णकलश का रूप होता है, किन्तु अपनी प्रामाणिकता का दुन्दुभिनाद और कीर्तिध्वजायें फहराने में नहीं सकुचायेगा। अपनी प्रशंसा में स्वयं गीत गाने लगेगा। ऐसा वह क्यों करता है ? तो कारण स्पष्ट है कि वह संक्लेश की कालिमा से कलुषित है। ऐसी प्रवृत्ति करके ही वह अपने आप में सन्तोष अनुभव करता है। लेकिन इसके विपरीत जिस व्यक्ति का मानस विशुद्ध है, वह वैसे किसी भी कार्य को नहीं करेगा जो दूसरे को त्रासजनक हो और स्वयं में जिसके द्वारा हीनता का अनुभव हो।

इस प्रकार की विभिन्नतायें ही बंधहेतुओं के विकल्पों और तरतमता की कारण हैं। इन विकल्पों का वर्णन करना इस अधिकार का विषय है। अतः अब संक्षेप में विषय परिचय प्रस्तुत करते हैं।

विषय परिचय

अधिकार का विषय संक्षेप में उसकी प्रथम गाथा में दिया है—

बंधस्स मिच्छ अविरइ कसाय जोगा य हेयवो भणिया।

अर्थात् मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग कर्मबंध के हेतु हैं। तत्पश्चात् इन हेतुओं के अवान्तर भेदों का नामोल्लेख करके गुणस्थान और जीवस्थान के भेदों के आधार से पहले गुणस्थानों में सम्भव मूलबंधहेतुओं को बतलाने के अनन्तर उनके अवान्तर भेदों का निर्देश किया है। इस वर्णन में यह स्पष्ट किया है कि विकास क्रम से जैसे-जैसे आत्मा उत्तरोत्तर गुणस्थानों को प्राप्त करती जाती है, तदनुरूप बंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कारण न्यूनातिन्यून होते जाते हैं और पूर्व-पूर्व में उनकी अधिकता है। यह वर्णन अनेक जीवों को आधार बनाकर किया है।

अनन्तर एक जीव एवं समयापेक्षा गुणस्थानों में प्राप्त जघन्य-उत्कृष्ट बंधहेतुओं का वर्णन किया है। यह निर्देश करना आवश्यक भी है। क्योंकि प्रत्येक जीव अपनी वैभाविक परिणति की क्षमता के अनुरूप ही बंधहेतुओं के माध्यम से कर्म बंध कर सकता है। ऐसा नहीं है कि सभी को एक ही प्रकार के कर्म-पुद्गलों का बंध हो, एक जैसी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग शक्ति प्राप्त हो।

यह समस्त वर्णन आदि की छह गाथाओं में किया गया है। अनन्तर सातवीं गाथा से प्रथम मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में प्राप्त बंधहेतुओं के सम्भव विकल्पों का निर्देश करके उनके भंगों की संख्या का निरूपण किया है। यह सब वर्णन चौदहवीं गाथा में पूर्ण हुआ है।

इसके बाद पन्द्रहवीं से लेकर अठारहवीं गाथा तक जीव-भेदों में प्राप्त बंधहेतुओं का वर्णन किया है। अनन्तर उन्नीसवीं गाथा में अन्वय-व्यतिरेक का अनुसरण करके कर्मप्रकृतियों के बंध में हेतुओं की मुख्यता का निर्देश किया है। अन्त में तीन गाथाओं में परीषहों के उत्पन्न होने के कारणों और किसको कितने परीषह हो सकते हैं, उनके स्वामियों का संकेत करके प्रस्तुत अधिकार की प्ररूपणा समाप्त की है।

यह अधिकार का संक्षिप्त परिचय है। विस्तृत जानकारी के लिए पाठकगण अध्ययन करेंगे, यह आकांक्षा है।

खजांची मोहल्ला
बीकानेर ३३४००१

—देवकुमार जैन
सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिक

गाथा १ ३–६

कर्मबंध के सामान्य बंधहेतु ३

कर्मबंध के सामान्य बंधहेतुओं की संख्या की संक्षेप विस्तार दृष्टि ४

मिथ्यात्व आदि हेतुओं के लक्षण ६

गाथा २ ६–९

मिथ्यात्व के पांच भेदों के नाम व लक्षण ७

गाथा ३ ९–१०

अविरति आदि के भेद १०

गाथा ४ ११–१३

गुणस्थानों में मूल बंधहेतु ११

गुणस्थानों सम्बन्धी मूल बंधहेतुओं का प्रारूप १३

गाथा ५ १४–१८

गुणस्थानों में मूल बंधहेतुओं के अवान्तर भेद १४

गाथा ६ १८–२०

एक जीव के समयापेक्षा गुणस्थानों में बंधहेतु १९

उक्त बंधहेतुओं का दर्शक प्रारूप २०

गाथा ७ २०–२४

मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जघन्यपदभावी बंधहेतु २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ८ २४–२६

मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती बंधहेतुओं के भंग २४

गाथा ९ २६–४०

मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती बंधहेतुओं का प्रमाण २७
मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती बंधहेतुओं के विकल्पों का प्रारूप ३८

गाथा १० ४१–४२

अनन्तानुबंधी के विकल्पोदय का कारण ४१

गाथा ११ ४२–५६

सासादनगुणस्थान के बंधहेतु ४२
सासादनगुणस्थान के बंधहेतुओं के विकल्पों का प्रारूप ४९
मिश्रगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग ५०
मिश्रगुणस्थान के बंधहेतुओं के विकल्पों का प्रारूप ५५

गाथा १२ ५७–७३

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग ५७
अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों का प्रारूप ६४
देशविरतगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग ६६
देशविरतगुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों का प्रारूप ७२

गाथा १३ ७३–८१

प्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग ७३
प्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों का प्रारूप ७६
अप्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग ७७
अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों का प्रारूप ७८
अपूर्वकरणगुणस्थान के बंधहेतु ७८
अपूर्वकरण गुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों का प्रारूप ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के बंधहेतु ८०
सूक्ष्मसंपराय आदि सयोगिकेवली पर्यन्त गुणस्थानों के बंधहेतु ८१

गाथा १४ ८१–८२

पूर्वोक्त गुणस्थानों के बंधहेतुओं के समस्त भंगों की संख्या ८१

गाथा १५ ८२–८३

जीवस्थानों में बंधहेतु-कथन की उत्थानिका ८२

गाथा १६ ८३–८७

पर्याप्त संज्ञी व्यतिरिक्त शेष जीवस्थानों में सम्भव बंध-
हेतु और उनका कारण ८४

गाथा १७ ८६–८८

एकेन्द्रिय आदि जीवों में सम्भव योग और गुणस्थान ८७

गाथा १८ ८९–१०७

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त छह मिथ्यादृष्टि जीवस्थानों
में योगों की संख्या ८९
शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त संज्ञी जीवस्थान में प्राप्त योग ८९
संज्ञी अपर्याप्त के बंधहेतु के भंग ९०
अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग ९३
पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग ९५
अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय के बंधहेतु के भंग ९६
पर्याप्त चतुरिन्द्रिय के बंधहेतु के भंग ९८
अपर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग ९९
पर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग १००
अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग १०१
पर्याप्त द्वीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग १०२
अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग १०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग १०५
अपर्याप्त, पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग १०६

गाथा १६ १०७–१०६

कर्मप्रकृतियों के विशेष बंधहेतु १०७

गाथा २० १०६–११४

तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक के बंधहेतु सम्बन्धी स्पष्टीकरण १०६

गाथा २१ ११४–११८

सयोगिकेवलीगुणस्थान में प्राप्त परीषह एवं कारण तथा उन परीषहों के लक्षण ११५

गाथा २२, २३ ११८–१२५

परीषहोत्पत्ति में कर्मोदयहेतुत्व व स्वामी ११६

परिशिष्ट १२६

बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार की मूल गाथाएँ १२६
दिगम्बर कर्म-साहित्य में गुणस्थानापेक्षा मूल बंध-प्रत्यय १२७
दिगम्बर कर्म साहित्य में गुणस्थानापेक्षा उत्तर बंध-प्रत्ययों के भंग १३१
गाथा-अकाराद्यनुक्रमणिका १७१

□ □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षिमहत्तर-विरचित

पंचसंग्रह

(मूल, शब्दार्थ तथा विवेचन युक्त)

बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ : बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार

बंधव्य-प्ररूपणा अधिकार का कथन करके अब क्रम-प्राप्त बंध-हेतु-प्ररूपणा अधिकार को प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम सामान्य बंधहेतुओं को बतलाते हैं। जिनके नाम और उत्तरभेद इस प्रकार हैं—

बंधस्स मिच्छ अविरइ कसाय जोगा य हेयवो भणिया।
ते पंच दुवालस पन्नवीस पन्नरस भेइल्ला ॥१॥

शब्दार्थ—**बंधस्स**—बंध के, **मिच्छ**—मिथ्यात्व, **अविरइ**—अविरति, **कसाय**—कषाय, **जोगा**—योग, **य**—और, **हेयवो**—हेतु, **भणिया**—कहे हैं (बताये हैं), **ते**—वे, **पंच**—पांच, **दुवालस**—बारह, **पन्नवीस**—पच्चीस, **पन्नरस**—पन्द्रह, **भेइल्ला**—भेद वाले।

गाथार्थ—कर्मबंध के मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, ये चार हेतु बताये हैं और वे अनुक्रम से पांच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह भेद वाले हैं।

विशेषार्थ—गाथा के पूर्वार्ध में कर्मबंध के सामान्य बंधहेतुओं का निर्देश करके उत्तरार्ध में उनके यथाक्रम से अवान्तर भेदों की संख्या बतलाई है। जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

आत्मा और कर्म-प्रदेशों का पानी और दूध अथवा अग्नि और लोहपिंड की तरह एकक्षेत्रावगाह हो जाना बंध है। जीव और कर्म का सम्बन्ध कनकोपल (स्वर्ण-पाषाण) में सोने और पाषाण रूप मल के संयोग की तरह अनादि काल से चला आ रहा है। संसारी जीव का वैभाविक स्वभाव-परिणाम रागादि रूप से परिणत होने का है और बद्ध कर्म का स्वभाव जीव को रागादि रूप से परिणमाने का है। जीव और कर्म का यह स्वभाव अनादि काल से चला आ रहा है। इस प्रकार के वैभाविक परिणामों और कर्मपुद्गलों में कार्य-कारण भाव सम्बन्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काषायिक परिणति के योग—सम्बन्ध से संसारी जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। वह योग परिस्पन्दन के द्वारा कर्म-पुद्गलों को आकर्षित करता है और कषायों के द्वारा स्वप्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाह रूप से सम्बद्ध कर लेता है। इस सम्बद्ध करने के कारणों को बंधहेतु कहते हैं।

विशेष रूप से समझाने के लिये शास्त्रों में अनेक प्रकार से बंधहेतुओं का उल्लेख है। जैसे कि—राग, द्वेष, ये दो अथवा राग, द्वेष और मोह, ये तीन हेतु हैं। अथवा मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, ये चार अथवा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये पांच बंधहेतु हैं। अथवा इन चार और पांच हेतुओं का विस्तार किया जाये तो प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, रात्रिभोजन, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, प्रेय, निदान, अभ्याख्यान, कलह, पैशुन्य (चुगली), रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, मेय, मोष, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और प्रयोग, ये अट्ठाईस बंधहेतु हैं।

इस प्रकार संक्षेप और विस्तार से शास्त्रों में अनेक प्रकार से सामान्य बंधहेतुओं का विचार किया गया है। इसके साथ ही ज्ञानावरण आदि प्रत्येक कर्म के अपने-अपने बंधहेतु भी बतलाये हैं। लेकिन मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये पांचों समस्त कर्मों के सामान्य कारण के रूप में प्रसिद्ध हैं और इनके सद्भाव में ही ज्ञानावरण आदि प्रत्येक कर्म के अपने-अपने विशेषहेतु कार्यकारी हो सकते हैं। अतः इन्हीं के बारे में यहाँ विचार करते हैं।

कर्मबंध के सामान्य हेतुओं की संख्या के बारे में तीन परम्परायें देखने में आती हैं—

१—कषाय और योग,

२—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग,

३—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

दृष्टिभेद से कथन-परम्परा के उक्त तीन प्रकार हैं एवं संख्या और उनके नामों में भेद रहने पर भी तात्त्विक दृष्टि से इन परम्पराओं में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई भेद नहीं है। क्योंकि प्रमाद एक प्रकार का असंयम है। अतः उसका समावेश अविरति या कषाय में हो जाता है। इसी दृष्टि से कर्म-विचारणा के प्रसंग में कार्मग्रन्थिक आचार्यों ने मध्यममार्ग का आधार लेकर मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, इन चार को बंध-हेतु कहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी इन्हीं मिथ्यात्व आदि चार को सामान्य से कर्मबंध के हेतु रूप में बताया है। यदि इनके लिये और भी सूक्ष्मता से विचार करें तो मिथ्यात्व और अविरति, ये दोनों कषाय के स्वरूप से पृथक् नहीं जान पड़ते हैं। अतः कषाय और योग, इन दोनों को मुख्य रूप से बंधहेतु माना जाता है।

कर्मसाहित्य में जहाँ भी बद्ध कर्म-पुद्गलों में प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश, इन चार अंशों के निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख है वहाँ योग और कषाय को आधार बताया है कि प्रकृति और प्रदेश बंध का कारण योग तथा स्थिति व अनुभाग बंध का कारण कषाय है। फिर भी जिज्ञासुजनों को विस्तार से समझाने के लिये मिथ्यात्वादि चारों अथवा पांचों को बंधहेतु के रूप में कहा है। साधारण विवेकवान तो चार अथवा पांच हेतुओं द्वारा और विशेष मर्मज्ञ कषाय और योग, इन दो कारणों की परम्परा द्वारा कर्मबंध की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

उक्त चार या पांच बंधहेतुओं में से जहाँ पूर्व-पूर्व के बंधहेतु होंगे, वहाँ उसके बाद के सभी हेतु होंगे, ऐसा नियम है। जैसे मिथ्यात्व के होने पर अविरति से लेकर योग पर्यन्त सभी हेतु होंगे, किन्तु उत्तर का हेतु होने पर पूर्व का हेतु हो और न भी हो। क्योंकि जैसे पहले गुण-स्थान में अविरति के साथ मिथ्यात्व होता है, किन्तु दूसरे, तीसरे, चौथे गुणस्थान में अविरति के होने पर भी मिथ्यात्व नहीं होता है। इसी प्रकार अन्य बंधहेतुओं के लिए भी समझना चाहिये।

इस प्रकार से बंधहेतुओं के सम्बन्ध में सामान्य से चर्चा करने के पश्चात् ग्रन्थोल्लिखित चार हेतुओं का विचार करते हैं—

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग—ये चार कर्मबंध के सामान्य हेतु हैं अर्थात् ये सभी कर्मों के समान रूप से बंध के निमित्त हैं। यथा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य रीति से मिथ्यात्व आदि के सद्भाव में ज्ञानावरणादि आठों कर्मों की कार्मणवर्गणायें जीव-प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होंगी। लेकिन एक-एक कर्म के विशेष बंधहेतुओं का विचार किया जाये तो मिथ्यात्व आदि सामान्य हेतुओं के साथ उन विशेष हेतुओं के द्वारा उस कर्म का तो विशेष रूप से और शेष कर्मों का सामान्य रूप से बंध होगा। इसी बात को गाथा में 'कसाय जोगा' के अनन्तर आगत 'य-च' शब्द से सूचित किया गया है।

मिथ्यात्व—यह सम्यग्दर्शन से विपरीत—विरुद्ध अर्थवाला है। अर्थात् यथार्थ रूप से पदार्थों के श्रद्धान—निश्चय करने की रुचि सम्यग्दर्शन है और अयथार्थ श्रद्धान को मिथ्यादर्शन—मिथ्यात्व कहते हैं।

अविरति—पापों से—दोषों से विरत न होना।

कषाय—जो आत्मगुणों को कषे—नष्ट करे, अथवा जन्म-मरणरूप संसार की वृद्धि करे।

योग—मन-वचन-काय की प्रवृत्ति—परिस्पन्दन—हलन-चलन को योग कहते हैं।

इन मिथ्यात्वादि चार हेतुओं के अनुक्रम से पांच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह अवान्तर भेद होते हैं। अर्थात् मिथ्यात्व के पांच, अविरति के बारह, कषाय के पच्चीस और योग के पन्द्रह भेद हैं। गाथागत 'भेइल्ला' पद में इल्ल प्रत्यय 'मतु' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और मतु प्रत्यय 'वाला' के अर्थ का बोधक है। जिसका अर्थ यह हुआ कि ये मिथ्यात्व आदि अनुक्रम से पांच आदि अवान्तर भेद वाले हैं।

इस प्रकार से कर्मबंध के सामान्य बंधहेतु मिथ्यात्वादि और उनके अवान्तर भेदों को जानना चाहिये। अब अनुक्रम से मिथ्यात्व आदि के अवान्तर भेदों के नामों को बतलाते हैं। उनमें से मिथ्यात्व के पांच भेदों के नाम इस प्रकार हैं—

मिथ्यात्व के पांच भेदों के नाम

आभिग्गहियमणाभिग्गहं च अभिनिवेसियं चेव।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा होइ ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**आभिग्गहियं**—आभिग्रहिक, **अणाभिग्गहं**—अनाभिग्रहिक, **च**—और, **अभिनिवेसियं**—आभिनिवेशिक, **चेव**—तथा, **संसइयमणाभोगं**—सांशयिक, अनाभोग, **मिच्छत्तं**—मिथ्यात्व, **पंचहा**—पांच प्रकार का, **होइ**—है।

गाथार्थ—आभिग्रहिक और अनाभिग्रहिक तथा आभिनिवेशिक, सांशयिक, अनाभोग, इस तरह मिथ्यात्व के पांच भेद हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मिथ्यात्व के पांच भेदों के नाम बतलाये हैं। अर्थात् तत्त्वभूत जीवादि पदार्थों की अश्रद्धा, आत्मा के स्वरूप के अयथार्थ ज्ञान—श्रद्धानरूप मिथ्यात्व के पांच भेद यह हैं—

आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, आभिनिवेशिक, सांशयिक और अनाभोग।[1] जिनकी व्याख्या इस प्रकार है—

---

१ आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से मिथ्यात्व के भेद और उनके नाम बताये हैं। जैसे कि संशय, अभिगृहीत और अनभिगृहीत के भेद से मिथ्यात्व के तीन भेद हैं। अथवा एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान के भेद से मिथ्यात्व के पांच भेद हैं। अथवा नैसर्गिक और परोपदेशपूर्वक के भेद से मिथ्यात्व के दो भेद हैं और परोपदेशनिमित्तक मिथ्यात्व चार प्रकार का है—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और वैनयिक तथा इन चारों भेदों के भी प्रभेद तीन सौ तिरेसठ (३६३) हैं। अन्य भी संख्यात विकल्प होते हैं। परिणामों की दृष्टि से असंख्यात और अनुभाग की दृष्टि से अनन्त भी भेद होते हैं तथा नैसर्गिक मिथ्यात्व एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-पंचेंद्रिय, तिर्यंच, म्लेच्छ, शबर, पुलिंद आदि स्वामियों के भेद से अनेक प्रकार का है।

इस प्रकार मिथ्यात्व के विभिन्न प्रकार से भेदों की संख्या बताने का कारण यह है—

जावदिया वयणपहा, तावदिया चेव होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा तावदिया चेव परसमया॥

अर्थात्—जितने वचनमार्ग हैं, उतने ही नयवाद हैं और जितने नयवाद हैं, उतने ही परसमय होते हैं।

अतएव मिथ्यात्व के तीन या पांच आदि भेद होते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ये भेद तो उपलक्षणमात्र समझना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभिग्रहिक मिथ्यात्व—वंश-परम्परा से जिस धर्म को मानते आये हैं, वही धर्म सत्य है और दूसरे धर्म सत्य नहीं हैं, इस तरह असत्य धर्मों में से किसी भी एक धर्म को तत्त्वबुद्धि से ग्रहण करने से उत्पन्न हुए मिथ्यात्व को आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्व के वशीभूत होकर मनुष्य वोटिक आदि असत्य धर्मों में से कोई भी एक धर्म ग्रहण—स्वीकार करता है और उसी को सत्य मानता है। सत्यासत्य की परीक्षा नहीं कर पाता है।

अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व—आभिग्रहिक मिथ्यात्व से विपरीत जो मिथ्यात्व, वह अनाभिग्रहिक है। अर्थात् यथोक्त स्वरूप वाला अभिग्रह —किसी भी एक धर्म का ग्रहण जिसके अन्दर न हो, ऐसा मिथ्यात्व अनाभिग्रहिक कहलाता है। इस मिथ्यात्व के कारण मनुष्य यह सोचता है कि सभी धर्म श्रेष्ठ हैं, कोई भी बुरा नहीं है। इस प्रकार से सत्यासत्य की परीक्षा किये बिना कांच और मणि में भेद नहीं समझने वाले के सदृश कुछ माध्यस्थवृत्ति[1] को धारण करता है।

आभिग्रहिक और अनाभिग्रहिक, इन दोनों प्रकार के मिथ्यात्व में यह अन्तर है कि अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व नैसर्गिक, परोपदेशनिरपेक्ष —स्वाभाविक होता है। वैचारिक मूढ़ता के कारण स्वभावतः तत्त्व का अयथार्थ श्रद्धान होता है। जबकि आभिग्रहिक मिथ्यात्व में किसी भी कारणवश एकान्तिक कदाग्रह होता है। विचार-शक्ति का विकास होने पर भी दुराग्रह के कारण किसी एक ही दृष्टि को पकड़ लिया जाता है।

---

१ अभिप्राय यह है कि यह यथार्थरूप में माध्यस्थवृत्ति नहीं है। क्योंकि सच और झूठ की परीक्षा कर सच को स्वीकार करना एवं अन्य धर्माभासों पर द्वेष न रखना वास्तव में माध्यस्थवृत्ति है। परन्तु यहाँ तो सभी धर्म समान माने हैं, यानि ऊपर से मध्यस्थता का प्रदर्शन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिवेशिक मिथ्यात्व—सर्वज्ञ वीतरागप्ररूपित तत्त्वविचारणा का खण्डन करने के लिये अभिनिवेश—दुराग्रह, आवेश से होने वाला मिथ्यात्व आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहलाता है। इस मिथ्यात्व के वश होकर गोष्ठामाहिल आदि ने तीर्थंकर महावीर की प्ररूपणा का खंडन करके स्व-अभिप्राय की स्थापना की थी।

सांशयिक मिथ्यात्व—संशय के द्वारा होने वाला मिथ्यात्व सांशयिक मिथ्यात्व कहलाता है। विरुद्ध अनेक कोटि-संस्पर्शी ज्ञान को संशय कहते हैं। इस प्रकार के मिथ्यात्व से भगवान् अरिहन्तभाषित तत्त्वों में संशय होता है। जैसे कि भगवान् अरिहन्त ने धर्मास्तिकाय आदि का जो स्वरूप बतलाया है, वह सत्य है या असत्य है। इस प्रकार की श्रद्धा को सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

अनाभोग मिथ्यात्व—जिसमें विशिष्ट विचारशक्ति का अभाव होने पर सत्यासत्य विचार ही न हो, उसे अनाभोग मिथ्यात्व कहते हैं। यह एकेन्द्रिय आदि जीवों में होता है।[1]

इस प्रकार से मिथ्यात्व के पांच भेदों के नाम और उनके लक्षण जानना चाहिए। अब अविरति आदि के भेदों को बतलाते हैं—

अविरति आदि के भेद

छक्कायवहो मणइंदियाण अजमो असंजमो भणिओ।
इइ बारसहा सुगमो कसायजोगा य पुव्वुत्ता ॥३॥

शब्दार्थ—**छक्कायवहो**—छहकाय का वध, **मणइंदियाण**—मन और इन्द्रियों का, **अजमो**—अनिग्रह, **असंजमो**—असंयम, अविरति, **भणिओ**—कहे हैं, **इइ**—इस तरह, **बारसहा**—बारह प्रकार का, **सुगमो**—सुगम,

---

१ यहाँ एकेन्द्रियादि जीवों के अनाभोग मिथ्यात्व बतलाया है। किन्तु इसी गाथा एवं आगे पांचवी गाथा की स्वोपज्ञवृत्ति में संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के सिवाय शेष जीवों के अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व बताया है तथा इसी गाथा की स्वोपज्ञवृत्ति में 'आगम का अभ्यास न करना यानि अज्ञान ही श्रेष्ठ है', ऐसा अनाभोग मिथ्यात्व का अर्थ किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसायजोगा—कषाय और योग, **य**—और, **पुव्वुत्ता**—पूर्वोक्त—पूर्व में कहे हैं।

गाथार्थ—छह काय का वध और मन तथा (पांच) इन्द्रियों का अनिग्रह इस तरह अविरति के बारह भेद हैं और कषाय तथा योग के भेद पूर्व में कहे गये होने से सुगम हैं।

विशेषार्थ—गाथा में अविरति से लेकर योग पर्यन्त शेष रहे तीन सामान्य बंधहेतुओं के भेदों को बतलाया है और उसमें भी अविरति के बारह भेदों का नामोल्लेख करके कषाय और योग के क्रमशः पच्चीस एवं पन्द्रह भेदों के नाम पूर्व में कहे गये अनुसार यहाँ भी समझने का संकेत किया है।

अविरति के बारह भेदों के नाम इस प्रकार हैं—

'छक्कायवहो' इत्यादि, अर्थात् पृथ्वी, अप् (जल), तेज (अग्नि), वायु, वनस्पति और त्रस रूप छह काय के जीवों का वध—हिंसा करना और अपने-अपने विषय में यथेच्छा से प्रवृत्त मन और स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, इन पांच इन्द्रियों को नियन्त्रित न करना, इस प्रकार से अविरति के बारह भेद हैं—'इइ बारसहा'। असंयम के इन बारह भेदों की व्याख्या सुगम है। जैसे—पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा से विरत न होना, पृथ्वीकायिक अविरति है। इसी प्रकार शेष जलकायिक आदि अविरति के लक्षण समझ लेना चाहिए तथा मन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति होने देना मन-अविरति कहलाती है इत्यादि। अतः यहाँ उनकी विशेष व्याख्या नहीं की जा रही है। जिज्ञासुजन विस्तार से अन्य ग्रन्थों से समझ लेवें।

कषाय के पच्चीस भेद[1] तथा योग के पन्द्रह भेद[2] यथास्थान पूर्व में बतलाये जा चुके हैं। तदनुसार उनके नाम और लक्षण यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

---

१ अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि संज्वलन लोभ पर्यन्त सोलह कषाय और हास्यादि नव नोकषाय।

२ सत्य मनोयोग आदि चार मनोयोग, सत्य वचनयोग आदि चार वचनयोग और औदारिक काययोग आदि सात काययोग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से मिथ्यात्व आदि बन्धहेतुओं के अवान्तर भेदों को बतलाने के बाद अब इन मिथ्यात्वादि मूल बंधहेतुओं को गुणस्थानों में घटित करते हैं।

गुणस्थानों में मूल बंधहेतु

चउपच्चइओ मिच्छे तिपच्चओ मीससासणाविरए।
दुगपच्चओ पमत्ता उवसंता जोगपच्चइओ ॥४॥

शब्दार्थ—**चउपच्चइओ**—चार प्रत्ययों, चार हेतुओं द्वारा, **मिच्छे**—मिथ्यात्वगुणस्थान में, **तिपच्चओ**—तीन प्रत्ययों—तीन हेतुओं द्वारा, **मीससास-णाविरए**—मिश्र, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में, **दुगपच्चओ**—दो प्रत्ययों द्वारा, **पमत्ता**—प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में, **उवसंता**—उपशांतमोह आदि गुणस्थानों में, **जोगपच्चइओ**—योगप्रत्ययिक—योगरूप हेतु द्वारा।

गाथार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में चार हेतुओं द्वारा, मिश्र, सासादन और अविरत गुणस्थानों में तीन हेतुओं द्वारा, प्रमत्त आदि गुणस्थानों में दो हेतुओं द्वारा और उपशांतमोह आदि गुणस्थानों में योग द्वारा बन्ध होता है।

विशेषार्थ—गाथा में सामान्य बन्धहेतुओं को गुणस्थानों में घटित किया है कि किस गुणस्थान तक कितने हेतुओं के द्वारा कर्मबन्ध होता है।

इस विधान को पहले मिथ्यात्वगुणस्थान से प्रारम्भ करते हुए बताया है कि 'चउपच्चइओ मिच्छे'—अर्थात् मिथ्यादृष्टि नामक पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप चारों हेतुओं द्वारा कर्मबन्ध होता है। क्योंकि मिथ्यात्वगुणस्थान में चारों बन्ध-हेतु हैं और चारों बन्धहेतुओं के पाये जाने के कारण को पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि पूर्व हेतु के रहने पर उत्तर के सभी हेतु पाये जाते हैं। इसलिए जब मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व रूप हेतु है, तब उत्तर के अविरति, कषाय और योग, ये तीनों हेतु अवश्य ही पाये जायेंगे। इसीलिए मिथ्यात्वगुणस्थान में चारों बन्धहेतु हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादन, मिश्र और अविरतसम्यग्दृष्टि, इन दूसरे, तीसरे और चौथे तीन गुणस्थानों में अविरति, कषाय और योग रूप तीन हेतुओं द्वारा बन्ध होता है। क्योंकि मिथ्यात्व का उदय पहले गुणस्थान में ही होता है। अतः इन गुणस्थानों में मिथ्यात्व नहीं होने से अविरति आदि तीन हेतु पाये जाते हैं।

देशविरत में भी यही अविरति आदि पूर्वोक्त तीन हेतु हैं, किन्तु उनमें कुछ न्यूनता है। क्योंकि यहाँ त्रस जीवों की अविरति नहीं होती है। यद्यपि श्रावक त्रसकाय की सर्वथा अविरति से विरत नहीं हुआ है, लेकिन हिंसा न हो इस प्रकार के उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करता है, जिसकी यहाँ विवक्षा नहीं की है। इसीलिए इस गुणस्थान में कुछ न्यून तीन हेतुओं का संकेत किया है। ग्रन्थकार आचार्य ने तो गाथा में इसका कुछ भी संकेत नहीं किया है, लेकिन सामर्थ्य से ही समझ लेना चाहिए। क्योंकि इस गुणस्थान में न तो पूरे तीन हेतु ही कहे हैं और न दो हेतु ही। इसलिए यही समझना चाहिए कि पांचवें देशविरत-गुणस्थान में तीन से न्यून और दो से अधिक बंधहेतु हैं।

'दुगपच्चओ पमत्ता' अर्थात् छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान से लेकर दसवें सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त कषाय और योग, इन दो हेतुओं द्वारा कर्मबंध होता है। क्योंकि प्रमत्त आदि गुणस्थान सम्यक्त्व एवं विरति सापेक्ष हैं। जिससे इनमें मिथ्यात्व और अविरति का अभाव है। इसीलिए प्रमत्तसंयत आदि सूक्ष्मसंपराय पर्यन्त पांच गुणस्थानों में कषाय और योग, ये दो बंधहेतु पाये जाते हैं।

'उवसंता जोगपच्चइओ' अर्थात् ग्यारहवें उपशांतमोहगुणस्थान से लेकर तेरहवें सयोगिकेवलीगुणस्थान पर्यन्त तीन गुणस्थानों में मात्र योगनिमित्तक कर्मबन्ध होता है। क्योंकि इन गुणस्थानों में कषाय भी नहीं होती हैं। अतः योगनिमित्तक कर्मबन्ध इन तीन गुण-स्थानों में माना जाता है तथा अयोगिकेवली भगवंत किसी भी बन्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतु के विद्यमान न होने से किसी भी प्रकार का कर्मबन्ध नहीं करते हैं।[1]

इस प्रकार से गुणस्थानों में मिथ्यात्व आदि मूल बंधहेतुओं को जानना चाहिए। सरलता से समझने के लिए इनका प्रारूप इस प्रकार है—

क्रम	गुणस्थान	बंधहेतु
१	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ४
२,३,४	सामादन, मिश्र, अविरतसम्य.	अविरति, कषाय, योग ३
५	देशविरत	अविरति, कषाय, योग ३ (यहाँ अविरति प्रत्यय कुछ न्यून है।)
६-१०	प्रमत्तसंयत आदि सूक्ष्मसंपराय	कषाय, योग २
११-१३	उपशांतमोह आदि सयोगिकेवली	योग १
१४	अयोगिकेवली	× ×

१ इसी प्रकार से दिगम्बर कर्मग्रन्थों (दि. पंचसंग्रह, शतक अधिकार गाथा ७८, ७९ और गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ७८७, ७८८) में भी गुणस्थानों की अपेक्षा सामान्य बन्धहेतुओं का निर्देश किया है। पांचवें देशविरतगुणस्थान के बन्धहेतुओं के लिए संकेत किया है कि—

मिस्सगविदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥

—गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ७८७

अर्थात् एकदेश असंयम के त्याग वाले देशसंयमगुणस्थान में दूसरा अविरति प्रत्यय विरति से मिला हुआ है तथा आगे के दो प्रत्यय पूर्ण हैं। इस प्रकार इस गुणस्थान में दूसरा अविरति प्रत्यय मिश्र और उपरिम दो प्रत्यय कर्मबन्ध के कारण हैं। इस तरह पांचवें गुणस्थान के तीनों बंधहेतुओं के बारे में जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रकार से गुणस्थानों में मूल बंधहेतुओं को बतलाने के पश्चात् अब गुणस्थानों में मूल बंधहेतुओं के अवान्तर भेदों को बतलाते हैं—

गुणस्थानों में मूल बंधहेतुओं के अवान्तर भेद

पणपन्न पन्न तियछहियचत्त गुणचत्त छक्कचउसहिया।
दुजुया य बीस सोलस दस नव नव सत्त हेऊ य ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—पणपन्न—पचपन, **पन्न**—पचास, **तियछहियचत्त**—तीन और छह अधिक चालीस अर्थात् तेतालीस, छियालीस, **गुणचत्त**—उनतालीस **छक्कचउसहिया**—छह और चार सहित, **दुजुया**—दो सहित, **य**—और, **बीस**—बीस, **सोलस**—सोलह, **दस**—दस, **नव**—नौ, **नव**—नौ, **सत्त**—सात, **हेऊ**—हेतु, **य**—और।

गाथार्थ–पचपन, पचास, तीन और छह अधिक चालीस, उनतालीस, छह, चार और दो सहित बीस, सोलह, दस, नौ, नौ और सात, इस प्रकार मूल बंधहेतुओं के अवान्तर भेद अनुक्रम से तेरह गुणस्थानों में होते हैं।

विशेषार्थ—चौदहवें अयोगिकेवलीगुणस्थान में बंधहेतुओं का अभाव होने से नाना जीवों और नाना समयों की अपेक्षा गाथा में पहले मिथ्यात्व से लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त तेरह गुणस्थानों में अनुक्रम से मूल बन्धहेतुओं के अवान्तर भेद बतलाये हैं। जिनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

मिथ्यात्व आदि चारों मूल बंधहेतुओं के क्रमशः पांच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह उत्तरभेदों का जोड़ सत्तावन होता है। उनमें से पहले मिथ्यात्वगुणस्थान में आहारक और आहारकमिश्र काययोग, इन दो काययोगों के सिवाय शेष पचपन बंधहेतु होते हैं। यहाँ आहारकद्विक काययोग का अभाव होने का कारण यह है कि आहारकद्विक आहारकलब्धिसम्पन्न चतुर्दश पूर्वधर मुनियों के ही होते हैं तथा इन दोनों का बन्ध सम्यक्त्व और संयम सापेक्ष है। किन्तु पहले गुणस्थान में न तो सम्यक्त्व है और न संयम है। जिससे पहले गुणस्थान में ये दोनों नहीं पाये जाते हैं। इसलिए इन दोनों योगों के सिवाय शेष पचपन बंधहेतु मिथ्यात्व गुणस्थान में हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनगुणस्थान में पांच प्रकार के मिथ्यात्व का अभाव होने से उनके बिना शेष पचास बंधहेतु होते हैं।

तीसरे मिश्रगुणस्थान में तेतालीस बंधहेतु हैं। यहाँ अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क, कार्मण, औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र, ये सात बंधहेतु भी नहीं होते हैं। इसलिए पूर्वोक्त पचास में से इन सात को कम करने पर शेष तेतालीस बंधहेतु तीसरे गुणस्थान में माने जाते हैं। अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क आदि सात हेतुओं के न होने का कारण यह है कि 'न **सम्ममिच्छो कुणइ कालं**—सम्यग्मिथ्यादृष्टि काल नहीं करता है' ऐसा शास्त्र का वचन होने से मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव परलोक में नहीं जाता है। जिससे अपर्याप्त अवस्था में संभव कार्मण और औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र, ये तीन योग नहीं पाये जाते हैं तथा पहले और दूसरे गुणस्थान तक ही अनन्तानुबंधी कषायों का उदय होता है। इसलिये अनन्तानुबंधी चार कषाय भी यहाँ संभव नहीं हैं। अतएव अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क, कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र, इन सात हेतुओं को पूर्वोक्त पचास में से कम करने पर शेष तेतालीस बंधहेतु तीसरे गुणस्थान में होते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थान में छियालीस बंधहेतु होते हैं। क्योंकि इस गुणस्थान में मरण संभव होने से परलोकगमन भी होता है, जिससे तीसरे गुणस्थान के बंधहेतुओं में से कम किये गये और अपर्याप्त-अवस्थाभावी कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र, ये तीन योग यहाँ सम्भव होने से उनको मिलाने पर छियालीस बंधहेतु होते हैं।[1]

देशविरतगुणस्थान में उनतालीस बंधहेतु होते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय नहीं है तथा त्रस-

---

१ दिगम्बर कर्मग्रन्थों (पंच-संग्रह, गाथा ८० और गो. कर्मकाण्ड, गाथा ७८९) में भी आदि के चार गुणस्थानों में नाना जीवों और समय की अपेक्षा इसी प्रकार से उत्तर बंधहेतुओं की संख्या का निर्देश किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काय की अविरति नहीं होती है और इस गुणस्थान में मरण असंभव होने से विग्रहगति और अपर्याप्त अवस्था में संभव कार्मण और औदारिकमिश्र, ये दो योग भी नहीं होते हैं। अतएव पूर्वोक्त छियालीस में से अप्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क, त्रसकाय की अविरति और औदारिकमिश्र, कार्मण, इन सात हेतुओं को कम करने पर उनतालीस बंधहेतु होते हैं।

प्रश्न—देशविरत श्रावक मात्र संकल्प से उत्पन्न त्रसकाय की अविरति से विरत हुआ है, किन्तु आरम्भजन्य अविरति से विरत नहीं हुआ है। आरम्भजन्य त्रस की अविरति तो श्रावक में है ही। तो फिर बंधहेतुओं में से त्रस-अविरति को कैसे अलग कर सकते हैं?

उत्तर—उपर्युक्त दोष यहाँ घटित नहीं होता है। क्योंकि श्रावक यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला होने से आरम्भजन्य त्रस की अविरति होने पर भी उसकी विवक्षा नहीं की है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में छब्बीस बंधहेतु हैं। छब्बीस बंधहेतुओं को मानने का कारण यह है कि इस गुणस्थान में अविरति सर्वथा नहीं होती है और प्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क का भी उदय नहीं है। किन्तु लब्धिसम्पन्न चतुर्दश पूर्वधर मुनियों के आहारकद्विक संभव होने से ये दो योग होते हैं। अतः अविरति के ग्यारह भेद[1] और प्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क, कुल पन्द्रह बंधहेतुओं को पूर्वोक्त उनतालीस में से कम करने और आहारक, आहारकमिश्र, इन दो योगों को मिलाने पर छब्बीस बंधहेतु माने जाते हैं तथा अप्रमत्तसंयत लब्धिप्रयोग करने वाले नहीं होने से आहारकशरीर या वैक्रियशरीर का आरम्भ नहीं करते हैं। जिससे उनमें आहारकमिश्र अथवा वैक्रियमिश्र, ये दो योग नहीं होते हैं। अतः पूर्वोक्त छब्बीस में से वैक्रियमिश्र और आहा-

---

१ त्रसकाय-अविरति को पूर्व में कम कर देने से यहाँ ग्यारह अविरति भेद कम किये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रकमिश्र, इन दो योगों को कम करने पर चौबीस बंधहेतु[1] अप्रमत्त-संयत नामक सातवें गुणस्थान में होते हैं ।

आठवें अपूर्वकरणगुणस्थान में आहारककाययोग और वैक्रिय-काययोग, ये दो योग भी नहीं होते हैं । अतः अप्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती चौबीस बंधहेतुओं में से इन दो योगों को कम करने पर शेष बाईस ही बंधहेतु अपूर्वकरणगुणस्थान में होते हैं ।

हास्यादिषट्क नोकषायों का अपूर्वकरणगुणस्थान में ही उदय-विच्छेद होने से नौवें अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में पूर्वोक्त बाईस बंधहेतुओं में से इनको कम करने पर सोलह बंधहेतु पाये जाते हैं तथा अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में वेदत्रिक, संज्वलनत्रिक—संज्वलन क्रोध, मान, माया का उदयविच्छेद हो जाने से पूर्वोक्त सोलह में से वेदत्रिक और संज्वलनत्रिक इन छहः को कम करने पर सूक्ष्मसंप-राय नामक दसवें गुणस्थान में दस बंधहेतु होते हैं ।

संज्वलन लोभ का सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में उदयविच्छेद हो जाने से ग्यारहवें उपशांतमोहगुणस्थान में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय के सम्पूर्ण भेदों और योग के भेदों में से कार्मण, औदारिकमिश्र, वैक्रिय-द्विक, आहारकद्विक, इन छह भेदों का भी उदयविच्छेद पूर्व में हो जाने से शेष रहे योगरूप नौ बंधहेतु होते हैं । यही नौ बंधहेतु बारहवें क्षीण-कषायगुणस्थान में भी जानना चाहिये ।

सयोगिकेवली गुणस्थान में सत्यमनोयोग, असत्यामृषामनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यामृषावचनयोग, कार्मणकाययोग, औदारिककाय-योग और औदारिकमिश्रकाययोग, ये सात बंधहेतु होते हैं । इनमें से केवलिसमुद्घात के दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्र और

---

१ यद्यपि यहाँ आहारक की तरह वैक्रियकाययोग कहा है । परन्तु तत्त्वार्थ सूत्र २/४४ की सिद्धर्षिगणि टीका में वैक्रिय शरीर बनाकर उत्तरकाल में अप्रमत्त गुणस्थान में नहीं जाता है, ऐसा कहा है । अतएव इस अपेक्षा से अप्रमत्त गुणस्थान में वैक्रियकाययोग भी घटित नहीं होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे, चौथे, पांचवें समय में कार्मणकाययोग और शेष काल में औदारिककाययोग होता है। सत्य और असत्यामृषा वचनयोग प्रवचन के समय और दोनों मनोयोग अनुत्तरविमानवासी आदि देवों और अन्य क्षेत्र में विद्यमान मुनियों द्वारा मन से पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते समय होते हैं।

अयोगिकेवली भगवान शरीर में रहने पर भी सर्वथा मनोयोग, वचनयोग और काययोग का रोध करने वाले होने से उनके एक भी बंधहेतु नहीं होता है।

इस प्रकार अनेक जीवापेक्षा गुणस्थानों में संभव मिथ्यात्व आदि बंधहेतुओं के पचपन आदि अवान्तर भेद जानना चाहिये।[1] अब एक जीव के एक समय में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट से गुणस्थानों में संभव बंधहेतुओं को बतलाते हैं।

एक जीव एवं समयापेक्षा गुणस्थानों में बन्धहेतु

दस दस नव नव अड पंच जइतिगे दु दुग सेसयाणेगो।
अड सत्त सत्त सत्तग छ दो दो दो इगि जुया वा ॥६॥

शब्दार्थ—**दस दस**—दस, दस, **नव नव**—नौ, नौ, **अड**—आठ, **पंच**—पांच, **जइतिगे**—यतित्रिक में, (प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण गुणस्थान में), **दुदुग**—दो, दो **सेसयाणेगो**—शेष गुणस्थानों में एक, **अड**—आठ, **सत्त सत्त सत्तग**—सात, सात, सात, **छ**—छह, **दो दो दो**—दो, दो, दो, **इगि**—एक, **जुया**—साथ, **वा**—विवक्षा से।

गाथार्थ—एक समय में एक जीव के कम से कम मिथ्यात्व आदि तेरहवें गुणस्थानपर्यन्त क्रमशः दस, दस, नौ, नौ, आठ, यतित्रिक में पांच, पांच, पांच, दो में दो, दो और शेष गुणस्थानों में

---

१. दिगम्बर कर्मसाहित्य में यहाँ बताई गई अवान्तर बंधप्रत्ययों की संख्या से किन्हीं गुणस्थानों की संख्या में समानता एवं भिन्नता भी है। अतएव तुलना की दृष्टि से दिगम्बर कर्मसाहित्य में किये गये उत्तर बंधप्रत्ययों के वर्णन को परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक, एक हेतु है और उत्कृष्टतः उपर्युक्त संख्या में अनुक्रम से आठ, सात, सात, सात, छह, यतित्रिक में दो, दो, दो और नौवें में एक हेतु के मिलाने से प्राप्त संख्या जितने होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा के पूर्वार्ध द्वारा अनुक्रम से एक जीव के एक समय में मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में जघन्यतः प्राप्त बंधहेतु बतलाये हैं और उत्तरार्ध द्वारा उत्कृष्टपद की पूर्ति के लिये मिलाने योग्य हेतुओं की संख्या का निर्देश किया है कि मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में जघन्य से दस आदि और उत्कृष्ट से आठ आदि संख्या को मिलाने से अठारह आदि बंधहेतु होते हैं। जिनका तात्पर्यार्थ इस प्रकार है—

पहले मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में जघन्यतः एक समय में एक जीव के एक साथ दस, उत्कृष्टतः अठारह और मध्यम ग्यारह से लेकर सत्रह पर्यन्त बंधहेतु होते हैं। इसी प्रकार उत्तर के सभी गुणस्थानों में मध्यमपद के बंधहेतुओं का विचार स्वयं कर लेना चाहिये।

सासादन नामक दूसरे गुणस्थान में जघन्य से दस, उत्कृष्ट सत्रह, मिश्रगुणस्थान में जघन्य नौ, उत्कृष्ट सोलह, अविरतसम्यग्दृष्टि-गुणस्थान में जघन्य नौ, उत्कृष्ट सोलह, देशविरतगुणस्थान में जघन्य आठ, उत्कृष्ट चौदह, यतित्रिक—प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्व-करण गुणस्थानों में जघन्य पांच, पांच, पांच और उत्कृष्ट सात, सात, सात, अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में जघन्य दो, उत्कृष्ट तीन, सूक्ष्म-संपरायगुणस्थान में जघन्य और उत्कृष्ट दो बंधहेतु होते हैं और शेष रहे उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थानों में जघन्य और उत्कृष्ट का भेद नहीं है। अतः प्रत्येक में अजघन्योत्कृष्ट एक-एक ही बंधहेतु है।[1]

---

१ सूक्ष्मसंपराय आदि गुणस्थानों में उनके मिलाने योग्य संख्या नहीं होने से उसका संकेत नहीं किया है। अतः इन गुणस्थानों में गाथा के पूर्वार्ध में कही गई बंधहेतुओं की संख्या ही समझना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरलता से समझने के लिए जिनका प्रारूप इस प्रकार है—

गुणस्थान	मि.	सा.	मि.	अवि.	दे.	प्र.अ	अपू	अनि.	सू	उ	क्षी	स	अयो
जघन्यपद	१०	१०	९	९	८	५,५	५	२	२	१	१	१	×
मध्यमपद ११ से १७	११से१६	१०से१५	१०से१५	९से१३	६,६	६	×	२	१	१	१	×
उत्कृष्टपद	१८	१७	१६	१६	१४	७ ७	७	३	२	१	१	१	×

इस प्रकार से प्रत्येक गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा एक समय में उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य बंधहेतुओं को जानना चाहिए।[1]

अब प्रत्येक गुणस्थान में जघन्यादि की अपेक्षा बताये गये बंधहेतुओं के कारण सहित नाम बतलाते हैं। सर्वप्रथम मिथ्यात्वगुणस्थान के जघन्यपदभावी हेतुओं का निर्देश करते हैं।

मिच्छत्त एक्कायादिघाय अन्नयरअक्खजुयलुदओ।
वेयस्स कसायाण य जोगस्सणभयदुगंछा वा॥७॥

शब्दार्थ—**मिच्छत्त**—मिथ्यात्व, **एक्ककायादिघाय**—एक कायादिघात, **अन्नयर**—अन्यतर, **अक्ख**—इन्द्रिय, **जुयल**—युगल, **उदओ**—उदय, **वेयस्स**—वेद का, **कसायाण**—कषाय का **य**—और, **जोगस्स**—योग का, **अण**—अनन्तानुबंधी, **भयदुगंछा**—भय, जुगुप्सा, **वा**—विकल्प से।

गाथार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में एक मिथ्यात्व, एक कायादि का घात, अन्यतर इन्द्रिय का असंयम, एक युगल, अन्यतर वेद, अन्यतर क्रोधादि कषायचतुष्क, अन्यतर योग इस तरह जघन्यतः दस बंधहेतु होते हैं और अनन्तानुबंधी तथा भय, जुगुप्सा विकल्प से उदय में होते हैं। अर्थात् कभी उदय में होते हैं और कभी नहीं होते हैं।

---

१ दिगम्बर कर्मग्रन्थों में भी इसी प्रकार से प्रत्येक गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा एक समय में बंधहेतुओं का निर्देश किया है—

दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हं पि।
अट्ठ य चउदस पणयं सत्त तिए दु ति दु एगेगं॥

—पंचसंग्रह ४ | १०१
—गो-कर्मकाण्ड ७९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में एक समय में एक साथ जघन्यतः जितने बंधहेतु होते हैं, उनको गाथा में बताया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मिथ्यात्व के पांच भेदों में से कोई एक मिथ्यात्व, छह काय के जीवों में से एक, दो आदि काय की हिंसा के भेद से काय की हिंसा के छह भेद होते हैं। यथा—छह काय में से जब बुद्धिपूर्वक एक काय की हिंसा करे तब एक काय का घातक, किन्हीं दो काय की हिंसा करे तब दो काय का घातक, इसी प्रकार से तीन, चार, पांच की हिंसा करे तब अनुक्रम से तीन, चार और पांच काय का घातक और छहों काय की एक साथ हिंसा करे तो षट्काय का घातक कहलाता है। अतः इन छह कायघात भेदों में से अन्यतर एक कायघात भेद तथा श्रोत्रादि पांच इन्द्रियों में से किसी एक इन्द्रिय का असंयम[1] और हास्य-रति एवं शोक-अरति, इन दोनों युगलों में से किसी एक युगल का उदय, वेदत्रिक में से अन्यतर किसी एक वेद का उदय, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन इन तीन कषायों में से कोई भी क्रोधादि तीन कषायों का उदय। क्योंकि कषायों में क्रोध, मान, माया और लोभ का एक साथ उदय नहीं होता है परन्तु अनुक्रम से उदय में आती हैं। इसलिये जब क्रोध का उदय हो तब मान, माया या लोभ का उदय नहीं होता है। मान का उदय होने पर क्रोध, माया और लोभ का उदय नहीं होता है। इसी प्रकार माया और लोभ के लिए भी समझना चाहिये। परन्तु जब अप्रत्याख्यानावरणादि क्रोध का उदय हो तब प्रत्याख्यानावरणादि क्रोध का भी उदय होता है। इसी तरह मान, माया, लोभ के लिए भी समझना चाहिए। ऐसा नियम है कि ऊपर के क्रोधादि

---

१ मन का असंयम पृथक् होने पर भी इन्द्रियों के असंयम की तरह अलग नहीं बताने का कारण यह है कि मन के असंयम से ही इन्द्रिय असंयम होता है। अतः इन्द्रियों के असंयम से मन के असंयम को अलग न गिनकर इन्द्रिय असंयम के अन्तर्गत ग्रहण कर लिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का उदय होने पर नीचे के क्रोधादि का अवश्य उदय होता है। इसी-लिए यहाँ अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों में से क्रोधादित्रिक का ग्रहण किया है तथा दस योगों में से कोई भी एक योग। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान में जघन्य से एक साथ दस बंधहेतु होते हैं।

सरलता से समझने के लिए जिनका अंकस्थापनाविषयक प्रारूप इस प्रकार जानना चाहिए—

मि०	इ०	का०	कषाय	वे०	युगलद्विक	योग०
१	१	१	३	१	२	१

प्रश्न—योग के पन्द्रह भेद हैं। तो फिर यहाँ पन्द्रह योगों की बजाय दस योगों में से एक योग कहने का क्या कारण है?

उत्तर—मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में आहारकद्विक हीन शेष तेरह योग संभव हैं। क्योंकि यह पूर्व में बताया जा चुका है कि आहारक और आहारकमिश्र, ये दोनों काययोग लब्धिसम्पन्न चतुर्दश पूर्वधर को आहारकलब्धिप्रयोग के समय होते हैं। इसलिए आहारकद्विक काय-योग मिथ्यादृष्टि में संभव ही नहीं तथा उसमें भी जब अनन्तानुबंधी कषाय का उदय न हो तब दस योग ही संभव हैं।

यदि यह कहो कि अनन्तानुबंधी के उदय का अभाव मिथ्यादृष्टि के कैसे सम्भव है? तो इसका उत्तर यह है कि किसी जीव ने सम्यग्दृष्टि होने के पूर्व अनन्तानुबंधी की विसंयोजना की और वह मात्र विसंयोजना करके ही रुक गया, किन्तु विशुद्ध अध्यवसाय रूप तथाप्रकार की सामग्री के अभाव में मिथ्यात्व आदि के क्षय के लिए उसने प्रयत्न नहीं किया और उसके बाद कालान्तर में मिथ्यात्वमोह के उदय से मिथ्यात्वगुणस्थान में गया और वहाँ जाकर मिथ्यात्व-रूप हेतु के द्वारा अनन्तानुबंधी का बंध किया और बाँधे जा रहे उस अनन्तानुबंधी में प्रतिसमय शेष चारित्रमोहनीय के दलिकों को संक्रमित किया और संक्रमित करके अनन्तानुबंधी के रूप में परिण-माया, अतः जब तक संक्रमावलिका पूर्ण न हो तब तक मिथ्यादृष्टि होने और अनन्तानुबंधी को बाँधने पर भी एक आवलिका कालप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका उदय नहीं होता है[1] और उसके उदय का अभाव होने से मरण नहीं होता है। क्योंकि सत्कर्म आदि ग्रन्थों में अनन्तानुबंधी कषायों के उदय बिना के मिथ्यादृष्टि के मरण का निषेध किया है, जिससे भवान्तर में जाते समय जो सम्भव हैं ऐसे वैक्रियमिश्र, औदारिक-मिश्र और कार्मण, ये तीन योग भी नहीं होते हैं। इसी कारण यह कहा गया है कि दस योग में से कोई एक योग होता है।[2]

अनन्तानुबन्धी, भय और जुगुप्सा का उदय विकल्प से होता है। अर्थात् किसी समय उदय होता है और किसी समय नहीं होता है।

---

१ अनन्तानुबंधी कषायों की विसंयोजना करके मिथ्यात्व में आने वाला जिस समय मिथ्यात्व में आये, उसी समय अनन्तानुबंधिनी कषायों की अन्तः कोडाकोडी प्रमाण स्थिति बाँधता है। उसका अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त का है। यानि उतने काल तक उसका प्रदेश या रस से उदय नहीं होता है। परन्तु जिनका अबाधाकाल बीत गया है और रसोदय प्रवर्तमान है ऐसे अप्रत्याख्यानावरणादि के दलिकों को बंधती हुई अनन्तानुबंधी में संक्रमित करता है। वे संक्रमित दलिक एक आवलिका के पश्चात् उदय में आते हैं। जिससे मिथ्यात्वगुणस्थान में भी एक आवलिका तक अनन्तानुबंधी कषायों का उदय नहीं होता है। तथा—

जैसे बंधावलिका सकल करणों के अयोग्य है, उसी प्रकार जिस समय दलिक अन्य प्रकृति में संक्रान्त होते हैं, उस समय से लेकर एक आवलिका तक उन दलिकों में कोई करण लागू नहीं पड़ता है। इसलिए संक्रमावलिका भी समस्त करणों के अयोग्य है। जिस समय अनन्तानुबंधी कषायों को बाँधे उसी समय अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के दलिकों को संक्रमित करता है, जिससे बंध और संक्रम का समय एक ही है। इसी-लिए एक आवलिका तक अनन्तानुबंधी के उदय न होने का संकेत किया है।

२ दिगम्बर कर्मग्रन्थ पंचसंग्रह शतक अधिकार गा० १०३, १०४ एवं उनकी व्याख्या में भी इसी प्रकार से विस्तार से मिथ्यात्वगुणस्थान में दस योग होने के कारण को स्पष्ट किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये जब उनका उदय नहीं है तब जघन्यपद में पूर्वोक्त दस बंधहेतु होते हैं।

इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में जघन्यपदभावी दस बंधहेतुओं को समझना चाहिए। अब मिथ्यात्व आदि भेदों का विकल्प से परिवर्तन करने पर जो अनेक भंग सम्भव हैं, उनके जानने का उपाय बतलाते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती बंधहेतुओं के भंग

इच्चेसिमेगगहणे तस्संखा भंगया उ कायाणं।
जुयलस्स जुयं चउरो सया ठवेज्जा कसायाण ॥८॥

शब्दार्थ—**इच्चेसि**—इनमें से, **एगगहणे**—एक का ग्रहण करके, **तस्संखा**—उनकी संख्या, **भंगया**—भंग, **उ**—और, **कायाणं**—काय के भेदों की, **जुयलस्स**—युगल के, **जुयं**—दो, **चउरो**—चार, **सया**—सदा, **ठवेज्जा**—स्थापित करना चाहिए, **कसायाणं**—कषायों के।

गाथार्थ—भंगों की संख्या प्राप्त करने के लिए मिथ्यात्व के एक-एक भेद को ग्रहण करके उनके भेदों की संख्या, काय के भेदों की संख्या, युगल के स्थान पर दो और कषाय के स्थान पर चार की संख्या स्थापित करना चाहिए—रखना चाहिए।

विशेषार्थ—गाथा में मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती अनेक जीवों के आश्रय से एक समय में होने वाले बन्धहेतुओं की संख्या के भंगों को प्राप्त करने का उपाय बतलाया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पूर्व की गाथा में यह बताया है कि पांच मिथ्यात्व में से एक मिथ्यात्व, छह काय में से किसी एक काय का घात, पांच इन्द्रियों में से किसी एक इन्द्रिय का असंयम, युगलद्विक में से कोई एक युगल, वेदत्रिक में से कोई एक वेद, क्रोधादि चार कषायों में से कोई एक क्रोधादि कषाय और दस योगों में से किसी एक योग का ग्रहण करने से मिथ्यात्व गुणस्थान में एक जीव के आश्रय से एक समय में जघन्य से दस बंधहेतु होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब यदि एक समय में अनेक जीवों के आश्रय से भंगों की संख्या प्राप्त करना हो तो मिथ्यात्व आदि के भेदों की सम्पूर्ण संख्या स्थापित करना चाहिए। क्योंकि एक जीव को तो एक साथ मिथ्यात्व के सभी भेदों का उदय नहीं होता है। किसी को एक मिथ्यात्व का तो किसी को दूसरे मिथ्यात्व का उदय होता है तथा उपयोगपूर्वक जिस इन्द्रिय के असंयम में प्रवृत्त हो, उसको ग्रहण किये जाने से एक जीव को किसी एक इन्द्रिय का असंयम होता है और किसी को दूसरी इन्द्रिय का, इसी प्रकार किसी को एक काय का घात और वेद होता है तो किसी को दूसरे काय का घात और वेद होता है। इसलिए मिथ्यात्व आदि के स्थान पर उन के समस्त अवान्तर भेदों की संख्या इस प्रकार रखना चाहिए—

मिथ्यात्व के पांच भेद हैं, अतः उसके स्थान पर पांच का अंक, उसके बाद पृथ्वीकायादि के घात के आश्रय से काय के छह भेद होने से छह की संख्या और तत्पश्चात् इन्द्रिय असंयम के पांच भेद होने से उसके स्थान पर पांच की संख्या रखना चाहिये।

प्रश्न—पांच इन्द्रिय और मन, इस तरह इन्द्रिय असंयम के छह भेद होने पर भी इन्द्रिय के स्थान पर छह के बजाय पांच अंक रखने का क्या कारण है ?

उत्तर—इन्द्रियों की प्रवृत्ति के साथ मन का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। अतः पांचों इन्द्रियों की अविरति के अन्तर्गत ही मन की अविरति का भी ग्रहण किये जाने से मन की अविरति होने पर भी उसकी विवक्षा नहीं की है। इसीलिए इन्द्रिय असंयम के स्थान पर पांच की संख्या रखने का संकेत किया है।[१]

तत्पश्चात् हास्य-रति और अरति-शोक, इन युगलद्विक के स्थान पर दो के अंक को स्थापना करना चाहिए। क्योंकि इन दोनों युगलों का

१. दि. कर्मग्रन्थ पंचसंग्रह गाथा १०३, १०४ (शतक अधिकार) में इन्द्रिय असंयम के छह भेद मानकर छह का अंक रखने का निर्देश किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय क्रमपूर्वक होता है, युगपत् नहीं। हास्य का उदय होने पर रति का उदय तथा शोक का उदय होने पर अरति का उदय अवश्य होता है। इसीलिए हास्य-रति और शोक-अरति, इन दोनों युगलों को ग्रहण करने के लिए दो का अंक रखने का संकेत किया है।

इसके बाद तीन वेदों का क्रमपूर्वक उदय होने से वेद के स्थान पर तीन का अंक रखना चाहिये और क्रोध, मान, माया और लोभ का क्रमपूर्वक उदय होने से कषाय के स्थान पर चार का अंक रखना चाहिए। यद्यपि दस हेतुओं में अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन इन तीन कषायों के भेद से तीन हेतु लिए हैं। परन्तु अप्रत्याख्यानावरण क्रोध का उदय होने पर उसके बाद के प्रत्याख्यानावरणादि क्रोध का उदय अवश्य होता है। इसी प्रकार मान आदि का उदय होने पर तीन मानादि का एक साथ उदय होता है। लेकिन क्रोध, मान आदि का उदय क्रमपूर्वक होने से अंकस्थापना में कषाय के स्थान पर चार ही रखे जाते हैं। तत्पश्चात् योग की प्रवृत्ति क्रमपूर्बक होने से योग के स्थान पर दस की संख्या रखना चाहिए।

सरलता से समझने के लिए उक्त अंकस्थापना का रूपक इस प्रकार का है—

मिथ्यात्व	काय	इन्द्रिय	अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
५	६		५	२	३	४	१०

अब इस जघन्यपदभावी अंकस्थापना एवं मध्यम व उत्कृष्ट बन्धहेतुओं से प्राप्त भंगसंख्या का प्रमाण बतलाते हैं।

बंधहेतुओं के भंगों का प्रमाण

जा बायरो ता घाओ विगप्प इइ जुगवबन्धहेऊणं।
अणबन्धि भयदुगंछाण चारणा पुण विमज्झेसु ॥९॥

शब्दार्थ—**जा**—जहाँ तक, **बायरो**—बादरसंपराय, **ता**—वहाँ तक, **घाओ**—गुणाकार, **विगप्प**—विकल्प, **इइ**—इस प्रकार **जुगव**—एक साथ, **बन्धहेऊणं**—बन्धहेतुओं के, **अणबन्धि**—अनन्तानुबंधी, **भयदुगंछाण**—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भय, जुगुप्सा का, **चारणा**—बदलना, **पुण**—पुनः, **विमज्झसु**—मध्यम विकल्पों में।

गाथार्थ—जहाँ तक बादरसपराय (कषाय) हैं, वहाँ तक अर्थात् नौवें बादरसंपरायगुणस्थान तक अनुक्रम से स्थापित अंकों का गुणाकार करने से अनेक जीवाश्रित होने वाले बंधहेतुओं के विकल्प होते हैं। मध्यम विकल्पों में अनन्तानुबंधी, भय और जुगुप्सा की चारणा करना चाहिये।

विशेषार्थ—गाथा में मिथ्यात्व गुणस्थान के जघन्य से लेकर उत्कृष्ट बन्धहेतुओं तक के भंग प्राप्त करने का नियम बताया है कि अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानपर्यन्त पूर्वोक्त प्रकार से स्थापित अंकों का परस्पर गुणा करने पर एक समय में अनेक जीवों की अपेक्षा बन्धहेतुओं के विकल्प होते हैं।

इस नियम के अनुसार अब मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में बनने वाले भंगों की संख्या बतलाते हैं कि एक जीव के एक समय में बताये गये दस बंधहेतुओं के अनेक जीवापेक्षा छत्तीस हजार भंग होते हैं। जो इस प्रकार समझना चाहिये—

अवान्तर भेदों की अपेक्षा मिथ्यात्व के पांच प्रकार हैं। ये पांचों भेद एक-एक कायघात में संभव हैं। जैसे कि कोई एक आभिग्रहिक मिथ्यादृष्टि पृथ्वीकाय का वध करता है तो कोई अप्काय का वध करता है। इसी प्रकार कोई तेज, कोई वायु, कोई वनस्पति और कोई त्रस काय का वध करता है। जिससे आभिग्रहिक मिथ्यादृष्टि काय की हिंसा के भेद से छह प्रकार का होता है। इसी प्रकार अन्य मिथ्यात्व के प्रकारों के लिये भी समझना चाहिए। जिससे पांच मिथ्यात्वों की छह कायों की हिंसा के साथ गुणा करने पर (६×५=३०) तीस भेद हुए।

उपर्युक्त सभी तीस भेद एक-एक इन्द्रिय के असंयम में होते हैं। जैसे कि उक्त तीसों भेदों वाला कोई स्पर्शनेन्द्रिय की अविरति वाला होता है, दूसरा रसनेन्द्रिय की अविरति वाला होता है। इस प्रकार तीसरा, चौथा, पांचवाँ तीस-तीस भेद वाला जीव क्रमशः घ्राण, चक्षु और श्रोत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय की अविरति वाला होता है। इसलिए तीस को पांच इन्द्रियों की अविरति के साथ गुणा करने पर (३०×५=१५०) एक सौ पचास भेद हुए।

ये एक सौ पचास भेद हास्य-रति के उदय वाले होते हैं और दूसरे एक सौ पचास भेद शोक-अरति के उदय वाले होते हैं। इसलिए उनका युगलद्विक से गुणा करने पर (१५०×२=३००) तीन सौ भेद हुए।

ये तीन सौ भेद पुरुषवेद के उदयवाले होते हैं, दूसरे तीन सौ भेद स्त्रीवेद के उदयवाले और तीसरे तीन सौ भेद नपुंसकवेद के उदयवाले होते हैं। अतएव पूर्वोक्त तीन सौ भेदों का वेदों के साथ गुणा करने पर (३००×३=९००) नौ सौ भंग हुए।

ये नौ सौ भेद अप्रत्याख्यानावरणादि तीन क्रोध वाले और इसी प्रकार दूसरे, तीसरे और चौथे नौ सौ अप्रत्याख्यानावरणादि मान, माया और लोभ वाले होते हैं। इसलिये नौ सौ भेदों को चार कषायों से गुणा करने पर (९००×४=३६००) छत्तीस सौ भेद हुए।

उक्त छत्तीस सौ भेद योग के दस भेदों में से किसी न किसी योग से युक्त होते हैं। अतः छत्तीस सौ भेदों को दस योगों से गुणा करने पर (३६००×१०=३६०००) छत्तीस हजार भेद हुए।

इस प्रकार से एक समय में एक जीव में प्राप्त होने वाले जघन्य दस बंधहेतुओं के उसी समय में अनेक जीवों की अपेक्षा उन मिथ्यात्वादि के भेदों को बदल-बदल कर प्रक्षेप करने पर छत्तीस हजार भंग[1] होते

१. दिगम्बर कार्मग्रन्थिक आचार्यों ने अनेक जीवों की अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थान के जघन्यपद में ४३२०० भंग बतलाये हैं। ये भंग इन्द्रिय असंयम पाँच की बजाय छह भेद मानने की अपेक्षा जानना चाहिये। जिनकी अंकरचना का प्रारूप इस प्रकार है—५×६×६×४×३×२×१०=४३२००। यह कथन विवक्षाभेद का द्योतक है। यहाँ ३६००० भंग मन के असंयम को पांच इन्द्रियों के असंयम में गर्भित कर लेने से इन्द्रिय असंयम के पांच भेद मानकर कहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। ग्यारह आदि बन्धहेतुओं में भी मिथ्यात्व आदि के भेदों को बदलकर गुणा करने की भी यही रीति है। अतः अब ग्यारह आदि बंधहेतुओं के भंगों का प्रतिपादन करते हैं।

ग्यारह आदि बधहेतुओं के भंग

ये ग्यारह आदि हेतु अनन्तानुबंधी कषाय, भय और जुगुप्सा को बदल-बदल कर लेने और काय के वध की वृद्धि करने से होते हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर ग्यारह हेतु होते हैं।[1] उनके भंग पूर्व में कहे गये अनुसार छत्तीस हजार होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर ग्यारह होते हैं। यहाँ भी भंग छत्तीस हजार होते हैं।

३. अथवा अनन्तानुबंधी क्रोधादि चार में से किसी एक को मिलाने पर ग्यारह हेतु होते हैं। लेकिन अनन्तानुबंधी का उदय होने पर योग तेरह होते हैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबंधी का उदय होने पर मरण संभव होने से अपर्याप्त अवस्थाभावी कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र, ये तीन योग संभव हैं। अतः कषाय के साथ गुणा करने पर पूर्व में जो छत्तीस सौ भंग प्राप्त हुए थे, उनको दस के बदले तेरह योगों से गुणा करने पर (३६०० × १३ = ४६८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

---

१. भय अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर ग्यारह बंधहेतु तथा भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर बारह हेतु के भंग छत्तीस हजार ही होंगे, अधिक नहीं। क्योंकि भय और जुगुप्सा परस्पर विरोधी नहीं हैं, जिससे एक-एक के साथ गुणा करने पर भी छत्तीस हजार ही भंग होते हैं। युगलद्विक की तरह यदि परस्पर विरोधी हों, यानि एक जीव को भय और दूसरे जीव को जुगुप्सा हो तो दोनों से गुणा करने पर पदभंग बढ़ेंगे। परन्तु भय और जुगुप्सा दोनों का एक समय में एक जीव के उदय हो सकता है, जिससे उनकी भंगसंख्या में वृद्धि नहीं होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अथवा पूर्वोक्त जघन्य दस बंधहेतुओं में पृथ्वीकाय आदि छह काय में से कोई भी दो काय के बंध को गिनने पर ग्यारह हेतु होते हैं। क्योंकि दस हेतुओं में पहले से ही एक काय का वध ग्रहण किया गया है और यहाँ एक काय का वध और मिलाया है। जिससे दस के साथ एक को और मिलाने से ग्यारह हेतु हुए। छह काय के द्विकसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। इसलिये कायघात के स्थान पर (१५) पन्द्रह का अंक रखना चाहिये, जिससे मिथ्यात्व के पांच भेदों के साथ दो काय की हिंसा के द्विकसंयोग से होने वाले पन्द्रह भंगों के साथ गुणा करने पर (१५×५=७५) पचहत्तर भंग होते हैं और इन पचहत्तर भंगों का पांच इन्द्रियों के असंयम द्वारा गुणा करने पर (७५×५=३७५) तीन सौ पचहत्तर भंग हुए। इन तीन सौ पचहत्तर को युगलद्विक से गुणा करने पर (३७५×२=७५०) सात सौ पचास भंग हुए और इन सात सौ पचास को तीन वेदों से गुणा करने पर (७५०×३=२,२५०) दो हजार दो सौ पचास भंग हुए और इनको चार कषाय से गुणित करने पर (२,२५०×४=९०००) नौ हजार हुए और इन नौ हजार को दस योगों के साथ गुणा करने से (९०००×१०=९०,०००) नब्बे हजार भंग हुए।

इस प्रकार ग्यारह बंधहेतु के चार प्रकार हैं और मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकारों के कुल मिलाकर (३६,०००+३६,०००+४६,८००+९०,०००=२,०८,८००) दो लाख आठ हजार आठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार से ग्यारह बंधहेतुओं के भंगों का विचार करने के पश्चात् अब बारह बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं।

१. पूर्वोक्त जघन्य दस बंधहेतुओं में भय और जुगुप्सा, दोनों का प्रक्षेप करने पर बारह हेतु होते हैं। इसके भी पूर्व में कहे गये अनुसार छत्तीस हजार भंग होते हैं।

२. अथवा अनन्तानुबंधी और भय का प्रक्षेप करने पर भी बारह बंधहेतु होते हैं। लेकिन यहाँ अनन्तानुबंधी के उदय में तेरह योगों को लेने के कारण पहले की तरह (४६८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. अथवा अनन्तानुबंधी और जुगुप्सा को मिलाने पर भी बारह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् (४६८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग हुए।

४. अथवा एक काय के स्थान पर कायत्रय के वध को ग्रहण करने पर बारह हेतु होते हैं। छह काय के त्रिकसंयोग में बीस भंग होते हैं। इसलिये कायघात के स्थान पर बीस का अंक रखकर गुणा करना चाहिये। वह इस प्रकार—

मिथ्यात्व के पांच भेदों का कायहिंसा के त्रिकसंयोग से होने वाले बीस भंगों के साथ गुणा करने पर (२०×५=१००) सौ भंग हुए और इन सौ को पांच इन्द्रियों की अविरति से गुणा करने पर (१००×५=५००) पांच सौ भंग हुए और इन पांच सौ को युगलद्विक से गुणा करने पर (५००×२=१०००) एक हजार हुए और इनको तीन वेद से गुणा करने पर (१०००×३=३०००) तीन हजार हुए। इन तीन हजार को चार कषाय से गुणा करने पर (३०००×४=१२,०००) बारह हजार हुए और इनको भी दस योगों से गुणा करने पर (१२,०००×१०=१,२०,०००) एक लाख बीस हजार भंग हुए।

५. अथवा भय और कायद्विक की हिंसा का प्रक्षेप करने पर बारह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्व की तरह (९०,०००) नब्बे हजार भंग हुए।

६. इसी प्रकार जुगुप्सा और कायद्विक की हिंसा का प्रक्षेप करने पर भी (९०,०००) नब्बे हजार भंग हुए।

७. अथवा अनन्तानुबंधी और कायद्विक की हिंसा का प्रक्षेप करने पर भी बारह हेतु होते हैं। यहाँ कायहिंसा के स्थान पर द्विकसंयोग से होने वाले पन्द्रह भंग तथा अनन्तानुबंधी का उदय होने से तेरह योग रखना चाहिये और पूर्व में कही गई विधि के अनुसार गुणा करने पर (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार बारह हेतु सात प्रकार से होते हैं। जिनके भंगों का कुल योग (३६०००+४६८००+४६८००+१,२०,०००+९०,०००+

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

+९०,०००+१,१७,०००=५,४६,६००) पांच लाख छियालीस हजार छह सौ होता है।

अब तेरह हेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त जघन्यपदभावी दस बंधहेतुओं में भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबंधी का युगपत् प्रक्षेप करने पर तेरह बंधहेतु होते हैं। अनन्तानुबंधी के उदय में तेरह योग लेने से पूर्व की तरह (४६,८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग हुए।

२. अथवा दस बंधहेतुओं में ग्रहण किये गये एक काय के बदले कायचतुष्क को लेने पर भी तेरह हेतु होते हैं। छह काय के चतुष्क-संयोगी पन्द्रह भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर पन्द्रह का अंक रखने के पश्चात पूर्वक्रम से व्यवस्थापित अंकों का गुणा करने पर (९०,०००) नब्बे हजार भंग हुए।

३. अथवा भय और कायत्रिक की हिंसा को लेने पर भी तेरह हेतु होते हैं और छह काय के त्रिकसंयोग बीस भंग होने से कायवध के स्थान पर बीस का अंक रखना चाहिये और गुणाकार करने पर (१,२०,०००) एक लाख बीस हजार भंग हुए।

४. इसी प्रकार जुगुप्सा और कायत्रिक को मिलाने से भी तेरह हेतु होते हैं। इनके भी (१,२०,०००) एक लाख बीस हजार भंग होंगे।

५. अथवा अनन्तानुबंधी और कायत्रिक के वध को ग्रहण करने से भी तेरह हेतु होते हैं। जिनके पूर्वोक्त विधि के अनुसार अंकों का गुणाकार करने पर (१,५६,०००) एक लाख छप्पन हजार भंग हुए।

६. अथवा भय, जुगुप्सा और कायद्विक की हिंसा को ग्रहण करने से भी तेरह हेतु होते हैं। उसके (९०,०००) नब्बे हजार भंग हुए।

७. अथवा भय, अनन्तानुबंधी और कायद्विक को लेने पर भी तेरह हेतु होते हैं। उनके भी पूर्व की तरह (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होंगे।

८. इसी प्रकार अनन्तानुबंधी, जुगुप्सा और कायद्विक वध को लेने पर भी (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार तेरह बंधहेतु आठ प्रकार से होते हैं। जिनके कुल भंग (४६,८००+९०,००० + १,२०,००० + १,२०,००० + १,५६,०००+ ९०,०००+१,१७,०००+१,१७,०००=८,५६,८००) आठ लाख छप्पन हजार आठ सौ होते हैं।

इस तरह तेरह हेतुओं के आठ प्रकारों और उनके भंगों को जानना चाहिए। अब चौदह बंधहेतुओं के प्रकारों और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त जघन्यपदभावी दस बंधहेतुओं में एक कायवध के स्थान पर कायपंचक के वध को ग्रहण करने पर चौदह बंधहेतु होते हैं। छह काय के पांच के संयोग में छह भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर छह का अंक रखकर पूर्वोक्त रीति से अंकों का गुणा करने से (३६,०००) छत्तीस हजार भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायचतुष्कवध को ग्रहण करने पर भी चौदह हेतु होते हैं और छह काय के चतुष्कसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। अतएव कायवध के स्थान पर पन्द्रह को रखने पर पूर्वोक्त प्रकार से अंकों का परस्पर गुणा करने से (९०,०००) नब्बे हजार भंग होंगे।

३. इसी प्रकार जुगुप्सा और कायचतुष्कवध को लेने पर भी चौदह हेतु होते हैं। इनके (९०,०००) नब्बे हजार भंग होंगे।

४. अथवा अनन्तानुबंधी और कायचतुष्कवध लेने पर भी चौदह हेतु होते हैं। अनन्तानुबंधी के उदय में योग तेरह होते हैं और काय-चतुष्क के संयोगी पन्द्रह भंग होते हैं इसलिए योग के स्थान पर तेरह और कायवध के स्थान पर पन्द्रह रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होंगे।

५. अथवा भय, जुगुप्सा और कायत्रिक के वध को ग्रहण करने से भी चौदह हेतु होते हैं। कायत्रिक के संयोग के बीस भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर बीस का अंक रखकर अंकों का परस्पर गुणा करने पर (१,२०,०००) एक लाख बीस हजार भंग होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. अथवा भय, अनन्तानुबन्धी और कायत्रिकवध को लेने से भी चौदह हेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (१,५६,०००) एक लाख छप्पन हजार भंग होंगे।

७. इसी प्रकार जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और कायत्रिकवध के भी (१,५६,०००) एक लाख छप्पन हजार भंग होंगे।

८. अथवा भय, जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और कायद्विकवध को लेने पर भी चौदह हेतु होते हैं। उनके पूर्वोक्त विधि के अनुसार गुणा करने पर (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होंगे।

इस प्रकार चौदह बंधहेतु आठ प्रकार से होते हैं और इनके कुल भंगों की संख्या (३६,०००+९०,०००+९०,०००+१,१७,०००+१,२०,०००+१,५६,०००+१,५६,०००+१,१७,०००=८८२०००) आठ लाख बयासी हजार होती है।

अब पन्द्रह बंधहेतु के प्रकारों व भंगों का प्रतिपादन करते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में छहों काय की हिंसा को ग्रहण करने से पन्द्रह हेतु होते हैं। कायहिंसा का छह के संयोग में एक ही भंग होता है। अतः पूर्वोक्त अंकों में कायवध के स्थान पर एक का अंक रखकर अनुक्रम से अंकों का गुणा करने पर (६,०००) छह हजार भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायपंचकवध को ग्रहण करने से भी पन्द्रह हेतु होते हैं। छह काय के पांच के संयोग में छह भंग होते हैं। उनका पूर्वोक्त क्रम से गुणा करने पर (३६,०००) छत्तीस हजार भंग होते हैं।

३. इसी तरह जुगुप्सा और कायपंचकवध के भी (३६,०००) छत्तीस हजार भंग जानना चाहिए।

४. अथवा अनन्तानुबंधी और कायपंचकवध लेने से भी पन्द्रह हेतु होते हैं। अनन्तानुबन्धी के उदय में तेरह योग लिये जाने और कायहिंसा के पांच के संयोग में छह भंग होने से योग और काय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर तेरह और छह को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (४६,८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

५. अथवा भय, जुगुप्सा और कायचतुष्कवध के ग्रहण से भी पन्द्रह हेतु होते हैं। उनके भंग (९०,०००) नब्बे हजार होते हैं।

६. अथवा भय, अनन्तानुबंधी और कायचतुष्कवध के ग्रहण से भी पन्द्रह हेतु होते हैं। इनके भी पहले की तरह (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होते हैं।

७ इसी तरह जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और कायचतुष्कवध से बनने वाले पन्द्रह हेतुओं के भी (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होते हैं।

८. अथवा भय, जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और कायत्रिकवध को लेने से भी पन्द्रह हेतु होते हैं। इनके (१,५६,०००) एक लाख छप्पन हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार पन्द्रह हेतु आठ प्रकार से होते हैं और इनके कुल भंग (६,००० + ३६,००० + ३६,००० + ४६,८०० + ९०,००० + १,१७,००० + १,१७,००० + १,५६,००० = ६,०४,८००) छह लाख चार हजार आठ सौ होते हैं।

पन्द्रह हेतुओं के प्रकार और उन प्रकारों के भंगों की संख्या बतलाने के बाद अब सोलह बंधहेतुओं के प्रकार और उनके भंगों का प्रतिपादन करते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में भय और छहकायवध को ग्रहण करने पर सोलह हेतु होते हैं। पूर्वोक्त क्रमानुसार उनका गुणा करने पर (६,०००) छह हजार भंग होते हैं।

२. इसी प्रकार जुगुप्सा और छहकायहिंसा को मिलाने से भी सोलह हेतु होते हैं। पूर्वोक्त क्रमानुसार उनका गुणा करने पर (६,०००) छह हजार भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. अथवा अनन्तानुबंधी और छह काय के वध को मिलाने पर भी सोलह हेतु होते हैं। उनके ५×५×१×२×३×४×१३, इस क्रम से अंकों का गुणाकार करने पर (७,८००) सात हजार आठ सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायपंचकवध को मिलाने से भी सोलह हेतु होते हैं। उनके भी पूर्व की तरह (३६,०००) छत्तीस हजार भंग होते हैं।

५. अथवा भय, अनन्तानुबंधी और कायपंचकवध को मिलाने पर भी सोलह हेतु होते हैं। उनके (४६,८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

६. इसी प्रकार जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और पांच काय के वध को मिलाने पर भी सोलह हेतु होते हैं। उनका पूर्वोक्त प्रकार से गुणा करने पर (४६,८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

७. अथवा भय, जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और कायचतुष्कवध को मिलाने पर भी सोलह हेतु होते हैं। उनके पहले की तरह (१,१७,०००) एक लाख सत्रह हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार सोलह हेतु सात प्रकार से बनते हैं और उनके कुल भंग (६,०००+६,०००+७,८००+३६,०००+४६,८००+४६,८००+ १,१७,०००=२,६६,४००) दो लाख छियासठ हजार चार सौ होते हैं।

सोलह हेतुओं के प्रकार और उनके भंगों को बतलाने के बाद अब सत्रह बंधहेतुओं के प्रकार व भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त जघन्यपदभावी दस हेतुओं में भय, जुगुप्सा और कायषट्कवध को मिलाने पर सत्रह हेतु होते हैं। उनका पूर्वोक्त क्रमानुसार अंकों का गुणा करने पर (६,०००) छह हजार भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अथवा भय, अनन्तानुबंधी और कायषट्क की हिंसा को मिलाने पर भी सत्रह हेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (७,८००) सात हजार आठ सौ भंग होंगे।

३. इसी प्रकार जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और छह काय की हिंसा को मिलाने पर भी सत्रह हेतु होते हैं। उनके भी (७,८००) सात हजार आठ सौ भंग होंगे।

४. अथवा भय, जुगुप्सा, अनन्तानुबंधी और कायपंचक का वध मिलाने से भी सत्रह हेतु होते हैं। उनके (४६,८००) छियालीस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार सत्रह बंधहेतु के चार प्रकार हैं और उन चारों प्रकारों के कुल भंग (६,०००+७,८००+७,८००+४६,८००=६८,४००) अड़सठ हजार चार सौ होते हैं।

अब मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जघन्य और मध्यम पदभावी बंधहेतुओं के प्रकारों और उनके भंगों का विचार करने के पश्चात् उत्कृष्ट पदभावी बंधहेतु और उनके भंगों का प्रतिपादन करते हैं—

पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में छह काय का वध, भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबंधी को मिलाने से अठारह हेतु होते हैं। उसके कुल भंग (७,८००) सात हजार आठ सौ होते हैं। इसमें विकल्प नहीं होने से प्रकार नहीं हैं।

इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान के दस से लेकर अठारह हेतुओं पर्यन्त भंगों का कुल जोड़ (३४,७७,६००) चौंतीस लाख सतहत्तर हजार छह सौ है।

मिथ्यात्वगुणस्थान के बंधहेतुओं के विकल्पों व उनके भंगों का सरलता से बोध कराने वाला प्रारूप इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	विकल्पगत भंग	कुल भंग
१०	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ मिथ्यात्व, १ इन्द्रिय असंयम, अप्रत्याख्यानावरणादि तीन कषाय, १ कायवध	३६०००	३६०००
११	पूर्वोक्त दस और दो काय का वध	६००००	
११	,, ,, ,, अनन्तानुबंधी	४६८००	
११	,, ,, ,, भय	३६०००	
११	,, ,, ,, जुगुप्सा	३६०००	२०८८००
१२	पूर्वोक्त दस तथा कायत्रिक का वध	१२००००	
१२	,, ,, ,, कायद्विकवध अनन्तानुबंधी	११७०००	
१२	,, ,, ,, भय	६००००	
१२	,, ,, ,, जुगुप्सा	६००००	
१२	,, ,, ,, अनन्ता. भय	४६८००	
१२	,, ,, ,, जुगुप्सा	४६८००	
१२	,, ,, ,, भय, जुगुप्सा	३६०००	५४६६००
१३	पूर्वोक्त दस कायचतुष्कवध	६००००	
१३	,, ,, कायत्रिकवध, अनन्ता.	१५६०००	
१३	,, ,, ,, भय	१२००००	
१३	,, ,, ,, जुगुप्सा	१२००००	
१३	,, ,, कायद्विकवध, अनन्ता. भय	११७०००	
१३	,, ,, ,, ,, जुगुप्सा	११७०००	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	विकल्पगतभंग	कुल भंग
१३	पूर्वोक्त दस, कायद्विकवध, भय,जुगुप्सा	९००००	
१३	,, ,, अनन्ता, भय, जुगुप्सा	४६०००	८५६८००
१४	पूर्वोक्त दस, कायपंचकवध	३६०००	
१४	,, ,, कायचतुष्कवध, अनन्ता.	११७०००	
१४	,, ,, ,, भय	९००००	
१४	,, ,, ,, जुगुप्सा	९००००	
१४	,, ,, कायत्रिकवध, अनन्ता. भय	१५६०००	
१४	,, ,, ,, जुगुप्सा	१५६०००	
१४	,, ,, ,, भय, जुगुप्सा	१२००००	
१४	,, ,, कायद्विकवध अनन्ता. भय, जुगुप्सा	११७०००	८८२०००
१५	,, ,, कायषट्कवध	६०००	
१५	,, ,, कायपंचकवध, अनन्ता०	४६८००	
१५	,, ,, ,, भय	३६०००	
१५	,, ,, ,, जुगुप्सा	३६०००	
१५	,, ,, कायचतुष्कवध, अनन्ता. भय	११७०००	
१५	,, ,, ,, अनन्ता. जुगुप्सा	११७०००	
१५	,, ,, ,, भय, जुगुप्सा	९००००	
१५	,, ,, कायत्रिकवध, अनन्ता. भय, जुगुप्सा	१५६०००	६०४८००
१६	पूर्वोक्त दस, कायषट्क वध,अनन्ता.	७८००	
१६	,, ,, ,, भय	६०००	
१६	,, ,, ,, जुगुप्सा	६०००	
१६	,, ,, कायपंचकवध, अनन्ता. भय	४६८००	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	विकल्पगतभंग	कुल भंग
१६	पूर्वोक्तदसकायपंचकवध अनन्ता जुगुप्सा	४६८००	
१६	,, ,, भय, जुगुप्सा	३६०००	
१६	पूर्वोक्त दस कायचतुष्कवध, अनन्ता. भय, जुगुप्सा	११७०००	२६६४००
१७	पूर्वोक्त दस कायषट्कवध अनन्ता, भय	७८००	
१७	,, ,, ,, ,, जुगुप्सा	७८००	
१७	,, ,, ,, भय, जुगुप्सा	६०००	
१७	,, ,, कायपंचकवध अनन्ता. भय, जुगुप्सा	४६८००	६८४००
१८	,, ,, कायषट्कवध अनन्ता. भय, जुगुप्सा	७८००	७८००
	कुल भंग संख्या		३४,७७,६००

इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में समस्त बंधहेतुओं के कुल भंग चौंतीस लाख सतहत्तर हजार छह सौ (३४,७७,६००) होते हैं।

नोट—इस प्रारूप में जघन्यपदभावी बंधहेतुओं में एक कायवध तो पूर्व में ग्रहण किया हुआ है। अतः कायद्विक आदि वध लिये जाने पर एक कायवध के अतिरिक्त शेष अधिक संख्या लेना चाहिये। जैसे—अठारह बंधहेतुओं में कायषट्कवध बताया है किन्तु उसमें एक कायवध का पूर्व में समावेश होने से छह के बदले कायपंचकवध, अनन्तानुबंधी, भय, जुगुप्सा इन आठ को मिलाने से अठारह हेतु होंगे। इसी प्रकार पूर्व में एवं आगे सर्वत्र समझना चाहिये।

अब अनन्तानुबंधी कषाय का मिथ्यादृष्टि के विकल्प से उदय होने एवं उसके उदयविहीन मिथ्यादृष्टि के संभव योगों के होने के कारण को स्पष्ट करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तानुबंधी के विकल्पोदय का कारण

अणउदयरहियमिच्छे जोगा दस कुणइ जन्न सो कालं ।
अणणुदओ पुण तदुवलगसम्मदिट्ठिस्स मिच्छुदए ।।१०।।

शब्दार्थ—अणउदयरहिय—अनन्तानुबंधी के उदय से रहित, **मिच्छे**—मिथ्यादृष्टि के, **जोगा**—योग, **दस**—दस, **कुणइ**—करता है, **जन्**—क्योंकि **न**—नहीं, **सो**—वह, **कालं**—मरण, **अणणुदओ**—अनन्तानुबंधी के उदय का अभाव, **पुण**—पुनः, **तदुवलग**—उसके उद्वलक, **सम्मदिट्ठिस्स**—सम्यग्दृष्टि के, **मिच्छुदए**—मिथ्यात्व का उदय होने पर ।

गाथार्थ—अनन्तानुबंधी के उदय से रहित मिथ्यादृष्टि के दस योग होते हैं । क्योंकि तथास्वभाव से वह मरण नहीं करता है । अनन्तानुबंधी के उदय का अभाव उसके उद्वलक सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का उदय होने पर होता है ।

विशेषार्थ—गाथा में अनन्तानुबंधी के उदय से रहित मिथ्यादृष्टि के दस और उदय वाले के तेरह योग होने एवं किस मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबंधी का उदय होता है ? के कारण को स्पष्ट किया है—

अनन्तानुबंधी के उदय से रहित मिथ्यादृष्टि के दस योग होने का कारण यह है कि अनन्तानुबंधी के उदय बिना का मिथ्यादृष्टि तथास्वभाव से मरण को प्राप्त नहीं होता है 'कुणइ जन्न सो कालं' और जब मरण नहीं करता है तो विग्रहगति और अपर्याप्त अवस्था में प्राप्त होने वाले कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र, ये तीन योग संभव नहीं हो सकते हैं । इसीलिए मिथ्यादृष्टि के दस योग ही होते हैं ।

प्रश्न—मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबंधी का अनुदय कैसे संभव है ?

उत्तर—अनन्तानुबंधी का अनुदय अनन्तानुबंधी की उद्वलान करने वाले—सत्ता में से नाश करने वाले सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्वमोहनीय का उदय होने पर होता है—'तदुवलगसम्मदिट्ठिस्स मिच्छुदए' । सारांश यह है कि जिसने अनन्तानुबंधी की उद्वलना की हो ऐसा सम्यग्दृष्टि जब मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से गिरकर मिथ्यात्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान को प्राप्त करता है और वहाँ बीजभूत मिथ्यात्व रूप हेतु के द्वारा पुनः अनन्तानुबंधी का बंध करता है, तब एक आवलिका काल तक उसका उदय नहीं होने से उतने कालपर्यन्त दस योग ही होते हैं।

इस प्रकार से मिथ्यात्वगुणस्थान सम्बन्धी बंधहेतुओं का समग्र रूप से विचार करने के पश्चात् अब द्वितीय सासादनगुणस्थान और उसके निकटवर्ती तीसरे मिश्रगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों का निर्देश करते हैं।

सासादन, मिश्र गुणस्थान के बंधहेतु

सासायणम्मि रूवं चय वेयहयाण नियगजोगाण।
जम्हा नपुंसउदए वेउव्वियमीसगो नत्थि ॥११॥

शब्दार्थ—**सासायणम्मि**—सासादन गुणस्थान में, **रूवं**—रूप (एक) **चय**—कम करना चाहिए, **वेयहयाण**—वेद के साथ गुणा करने पर, **नियगजोगाण**—अपने योगों का, **जम्हा**—क्योंकि, **नपुंसउदए**—नपुंसक वेद के उदय में, **वेउव्वियमीसगो**—वैक्रियमिश्र योग, **नत्थि**—नहीं होता है।

गाथार्थ—सासादनगुणस्थान में अपने योगों का वेदों के साथ गुणा करने पर प्राप्त संख्या में से एक रूप कम करना चाहिए। क्योंकि नपुंसकवेद के उदय में वैक्रियमिश्रयोग नहीं होता है।

विशेषार्थ—गाथा में सासादनगुणस्थान के बंधहेतुओं के विचार करने का एक नियम बतलाया है।

सासादन गुणस्थान में दस से सत्रह तक के बंधहेतु होते हैं। लेकिन इस गुणस्थान में मिथ्यात्व संभव नहीं होने से मिथ्यादृष्टि के जो जघन्य से दस बंधहेतु बताये हैं, उनमें से मिथ्यात्वरूप प्रथम पद निकालकर शेष पूर्व में कहे गये जघन्य पदभावी नौ बंधहेतुओं के साथ अनन्तानुबंधी कषाय को मिलाकर दस बंधहेतु जानना चाहिए। क्योंकि सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबंधी का उदय अवश्य होता है। अतः उसके बिना सासादन गुणस्थान ही घटित नहीं हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तानुबंधी के उदय में तेरह योग लेने का संकेत पूर्व में किया जा चुका है। इसलिए योग के स्थान पर तेरह का अंक स्थापित करना चाहिए। जिससे सासादन गुणस्थान के बंधहेतुओं के विचार प्रसंग में अंकस्थापना का रूप इस प्रकार होगा—

इन्द्रिय अविरति के स्थान पर ५, कायवध के स्थान पर उनके संयोगी भंग, कषाय के स्थान पर ४, वेद के स्थान पर ३, युगल के स्थान पर २ और योग के स्थान पर १३—

वेद	योग	काय अविरति	इन्द्रिय असंयम	युगल	कषाय
३	१३	६	५	२	४

इस प्रकार से अंक स्थापित करने के बाद सम्बन्धित विशेष स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में जितने योग हों, उन योगों के साथ पहले वेदों का गुणा करना चाहिए और गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त हो, उसमें से एक रूप (अंक) कम कर देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक-एक वेद के उदय में क्रमपूर्वक तेरह योग प्रायः संभव हैं। जैसे कि पुरुषवेद के उदय में औदारिक, वैक्रिय आदि काय-योग, मनोयोग के चार और वचनयोग के चार भेद संभव हैं। इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय में भी संभव हैं। इसलिए तीन वेद का तेरह से गुणा करने पर उनतालीस (३९) होते हैं। उनमें से एक रूप कम करने पर अड़तीस ३८ शेष रहेंगे।

प्रश्न—वेद के साथ योगों का गुणा करके उसमें से एक संख्या कम करने का क्या कारण है?

उत्तर—एक संख्या कम करने का कारण यह है कि सासादन-गुणस्थानवर्ती जीव के नपुंसकवेद के उदय में वैक्रियमिश्रकाययोग नहीं होता है—'नपुंसउदए वेउव्वियमीसगो नत्थि'। इसका कारण यह है कि यहाँ वैक्रियमिश्रकाययोग की कार्मण के साथ विवक्षा की है। यद्यपि नपुंसकवेद का उदय रहते वैक्रियमिश्रकाययोग नरकगति में ही होता है, अन्यत्र कहीं भी नहीं होता है। लेकिन सासादनगुण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान के साथ कोई भी जीव नरकगति में नहीं जाता है। इसीलिए वेद के साथ योगों का गुणा करके एक संख्या कम करने का संकेत किया है और उसके बाद शेष अंकों का गुणाकार करना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाये तो जितने भंग होते हैं, उतने निश्चित भंगों की संख्या का ज्ञान सुगमता से नहीं हो सकता है।

इस भूमिका के आधार से अब सासादनगुणस्थान में प्राप्त बंध-हेतुओं के भंगों का निर्देश करते हैं।

सासादन गुणस्थान में जघन्य पदभावी दस बंधहेतु होते हैं। उनके भंगों के लिए पूर्वोक्त प्रकार से अंक-स्थापना करके इस प्रकार गुणाकार करना चाहिए—

तीन वेद के साथ तेरह योग का गुणा करने पर (३×१३=३९) उनतालीस हुए। उनमें से एक रूप कम करने पर शेष अड़तीस (३८) रहे। ये अड़तीस भंग छह कायवध में घटित होते हैं। यथा—कोई सत्य-मनोयोगी पुरुषवेदी पृथ्वीकाय का वध करने वाला होता है, कोई सत्यमनोयोगी पुरुषवेदी अप्काय का वध करने वाला, कोई तेजस्-काय आदि का वध करने वाला भी होता है। इसी प्रकार असत्यमनो-योग आदि प्रत्येक योग और प्रत्येक वेद का योग करना चाहिए। जिससे अड़तीस को छह से गुणा करने पर (३८×६=२२८) दो सौ अट्ठाईस हुए। ये दो सौ अट्ठाईस एक-एक इन्द्रिय की अविरति वाले होते हैं। इसलिए उनको पांच से गुणा करने पर (२२८×५=११४०) ग्यारह सौ चालीस भंग हुए। ये ग्यारह सौ चालीस हास्य-रति के उदय वाले और दूसरे उतने ही (अर्थात् ११४०) शोक-अरति के उदय वाले भी होते हैं। इसलिए उनको दो से गुणा करने पर (११४०×२=२२८०) बाईस सौ अस्सी भंग हुए। ये बाईस सौ अस्सी जीव क्रोध के उदय वाले होते हैं, उतने ही मान के उदय वाले, उतने ही माया के उदय वाले और उतने ही लोभ के उदय वाले होते हैं। अतः इन बाईस सौ अस्सी को चार से गुणा करने पर (२२८०×४=९,१२०) नौ हजार एक सौ बीस भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार सासादनगुणस्थान में दस बंधहेतुओं के (९,१२०) नौ हजार एक सौ बीस भंग होते हैं। इसी तरह ऊपर कहे गये अनुसार आगे भी बंधहेतुओं के भंगों को जानने के लिये अंकों का क्रमपूर्वक गुणा करना चाहिये।

अब ग्यारह बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में जो एक काय का वध गिना है, उसके बदले कायद्विक का वध लेने पर ग्यारह हेतु होते हैं और कायद्विक के संयोगी पन्द्रह भंग होते हैं। इसलिये काय के स्थान पर छह के बदले पन्द्रह अंक रखना चाहिये और शेष की अंकसंख्या पूर्ववत् है। अतः पूर्वोक्त क्रमानुसार अंकों का गुणा करने पर (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

२. अथवा पूर्वोक्त दस हेतुओं में भय को मिलाने पर ग्यारह हेतु होते हैं। लेकिन भय को मिलाने से भंगों की संख्या में वृद्धि नहीं होती, इसलिये पूर्ववत् (९,१२०) नौ हजार एक सौ बीस भंग होते हैं।

३. इसी प्रकार से जुगुप्सा के मिलाने पर ग्यारह हेतुओं के भी (९,१२०) इक्यानवें सौ बीस भंग होते हैं।

इस प्रकार ग्यारह बंधहेतु तीन प्रकार से प्राप्त होते हैं और उनके भंगों का कुल योग (२२,८०० + ९,१२० + ९,१२० = ४१,०४०) इकतालीस हजार चालीस है।

ग्यारह बंधहेतुओं के भंगों का निर्देश करने के पश्चात अब बारह बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधुहेतुओं में एक काय के बदले कायत्रिक को लेने पर बारह हेतु होते हैं। कायषट्क के त्रिकसंयोग में बीस भंग होते हैं। अतएव कायवध के स्थान पर छह के बदले बीस का अंक रखना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्ववत् अंकों का गुणा करने पर (३०,४००) तीस हजार चार सौ भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायद्विक का वध लेने पर भी बारह हेतु होते हैं। उनके (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. इसी प्रकार जुगुप्सा और कायद्विकबध लेने पर भी (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा इन दोनों को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं। इनके (९,१२०) इक्यानवै सौ बीस भंग होते हैं।

इस प्रकार बारह हेतु चार प्रकार से होते हैं और उनके कुल भंग (३०,४००+२२,८००+२२,८००+९,१२०=८५,१२०) पिचासी हजार एक सौ बीस होते हैं।

अब तेरह बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में एक काय के स्थान पर चार काय का वध लेने पर तेरह हेतु होते हैं। छह काय के चतुष्कसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं, जिससे काय के स्थान पर पन्द्रह रखना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायत्रिक का वध मिलाने पर भी तेरह हेतु होते हैं। उनके (३०,४००) तीस हजार चार सौ भंग होते हैं।

३. इसी प्रकार जुगुप्सा और कायत्रिकवध रूप तेरह हेतुओं के भी (३०,४००) तीस हजार चार सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायद्विक वध को लेने पर भी तेरह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार तेरह बंधहेतु चार प्रकार से होते हैं और उनके कुल भंगों का योग (२२,८००+३०,४००+३०,४००+२२,८००= १,०६,४००) एक लाख छह हजार चार सौ है।

इस प्रकार से तेरह हेतुओं के भंगों का कथन करने के बाद अब चौदह हेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में पांच कायवध को ग्रहण करने पर चौदह हेतु होते हैं। कायपंचक के संयोग में छह काय के छह भंग होते हैं। उन छह भंगों को कायवध के स्थान पर स्थापित कर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (९,१२०) इक्यानवै सौ बीस भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायचतुष्क का वध मिलाने से भी चौदह हेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

३. इसी प्रकार जुगुप्सा और चार काय का वध मिलाने से भी चौदह हेतु होते हैं। उनके भी (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायत्रिक का वध मिलाने से भी चौदह हेतु होते हैं। कायवधस्थान में त्रिकसंयोग में बीस भंग रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (३०,४००) तीस हजार चार सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार चौदह बंधहेतु चार प्रकार से होते हैं। उनके कुल भंगों का योग (९,१२०+२२,८००+२२,८००+३०,४००=८५,१२०) पिचासी हजार एक सौ बीस है।

अब क्रमप्राप्त पन्द्रह हेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में छह काय का वध मिलाने पर पन्द्रह हेतु होते हैं। छह काय के वध का एक भंग होता है। उस एक भंग को कायवधस्थान पर रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणाकार करने पर (१,५२०) पन्द्रह सौ बीस भंग होते हैं।

२. अथवा भय और पंचकायवध मिलाने पर भी पन्द्रह हेतु होते हैं। उनके पूर्व की तरह (९१२०) इक्यानवै सौ बीस भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और पंचकायवध मिलाने पर भी पन्द्रह हेतु होते हैं। उनके पूर्व की तरह (९,१२०) इक्यानवै सौ बीस भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायचतुष्कवध को मिलाने पर भी पन्द्रह हेतु होते हैं। छह काय के चतुष्कसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। उन पन्द्रह भंगों को कायवधस्थान में रखकर पूर्वोक्त क्रम से गुणाकार करने पर (२२,८००) बाईस हजार आठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार पन्द्रह बंधहेतु के चार प्रकार हैं। उनके कुल भंग (१,५२०+९,१२०+९,१२०+२२,८००=४२,५६०) बयालीस हजार पांच सौ साठ होते हैं।

पन्द्रह बन्धहेतुओं के भंगों का कथन करने के पश्चात् अब सोलह बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में भय और छहकाय का वध मिलाने पर सोलह हेतु होते हैं। उनके (१,५२०) पन्द्रह सौ बीस भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा और छहकाय का वध मिलाने से भी सोलह हेतु होते हैं और उनके भी पूर्ववत् (१,५२०) पन्द्रह सौ बीस भंग होते हैं।

३. अथवा भय, जुगुप्सा और कायपंचकवध को मिलाने पर सोलह हेतु होते हैं। छह काय के पंचसंयोगी छह भंग होते हैं। जिनको कायबध के स्थान पर स्थापित कर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (९,१२०) इक्यानवे सौ बीस भंग होते हैं।

इस प्रकार सोलह बंधहेतु तीन प्रकार से होते है और उनके कुल भंगों का योग (१,५२०+१,५२०+९,१२०=१,२१६०) बारह हजार एक सौ साठ है।

अब सत्रह बंधहेतुओं के भंगों का निर्देश करते हैं—

पूर्वोक्त दस बंधहेतुओं में भय, जुगुप्सा और छह काय का वध मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। उनका पूर्वोक्त क्रम से गुणा करने पर (१,५२०) पन्द्रह सौ बीस भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से सासादनगुणस्थान में प्राप्त होने वाले जघन्य से उत्कृष्ट पर्यन्त (दस से सत्रह तक) के बंधहेतुओं और उनके भंगों को जानना चाहिये। इन सब बंधहेतु-प्रकारों के भंगों का कुल योग (३,८३,०४०) तीन लाख तेरासी हजार चालीस है।

सासादनगुणस्थान के बंधहेतुओं के प्रकारों और उनके भंगों का सरलता से बोध कराने वाला प्रारूप इस प्रकार है—

बंधहेतु	हेतु-विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंग
१०	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ इन्द्रिय-असंयम, ४ कषाय, १ कायवध	९१२०	९१२०
११	पूर्वोक्त दस और कायद्विकवध	२२८०	
११	,, ,, भय	९१२०	
११	,, ,, जुगुप्सा	९१२०	४१०४०
१२	पूर्वोक्त दस, कायत्रिकवध	३०४००	
१२	,, ,, कायद्विकवध, भय	२२८००	
१२	,, ,, ,, जुगुप्सा	२२८००	
१२	,, ,, भय, जुगुप्सा	९१२०	८५१२०
१३	पूर्वोक्त दस, कायचतुष्कवध	२२८००	
१३	,, ,, कायत्रिकवध, भय	३०४००	
१३	,, ,, ,, जुगुप्सा	३०४००	
१३	,, ,, कायद्विकवध, भय, जुगुप्सा	२२८००	१०६४००
१४	पूर्वोक्त दस, कायपंचकवध	९१२०	
१४	,, ,, कायचतुष्कवध, भय	२२८००	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु	हेतु-विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंग
१४	,, ,, ,, जुगुप्सा	२२८००	
१४	,, ,, कायत्रिकवध, भय, जुगुप्सा	३०४००	८५१२०
१५	पूर्वोक्त दस, कायषट्कवध	१५२०	
१५	,, ,, कायपंचकवध, भय	९१२०	
१५	,, ,, ,, जुगुप्सा	९१२०	
१५	,, ,, कायचतुष्कवध, भय, जुगुप्सा	२२८००	४२५६०
१६	पूर्वोक्त दस, कायषट्कवध, भय	१५२०	
१६	,, ,, ,, जुगुप्सा	१५२०	
१६	,, ,, कायपंचकवध, भय, जुगुप्सा	९१२०	१२१६०
१७	पूर्वोक्त दस, कायषट्कवध, भय, जुगुप्सा	१५२०	१५२०
		कुल भंग संख्या	३८३०४०

इस प्रकार सासादनगुणस्थान के बंधहेतु-प्रकारों के कुल भंगों का जोड़ तीन लाख तेरासी हजार चालीस (३,८३,०४०) होता है।

सासादनगुणस्थान के बंधहेतुओं का निर्देश करने के पश्चात् अब तीसरे मिश्रगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों का प्रतिपादन करते हैं।

मिश्रगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग

मिश्रगुणस्थान में नौ से सोलह तक बंधहेतु होते हैं।

मिश्रगुणस्थान में जघन्यपदभावी नौ बंधहेतु इस प्रकार हैं—१ वेद, १ योग, १ युगल, १ इन्द्रिय-असंयम, अप्रत्याख्यानावरणादि तीन क्रोधादि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ कायवध। ये पूर्ववर्ती दूसरे सासादनगुणस्थान के जघन्यपदवर्ती दस बंधहेतुओं में से अनन्तानुबंधी को कम करने पर प्राप्त होते हैं। अनन्तानुबंधिकषाय को कम करने का कारण यह है कि पहले और दूसरे इन दो गुणस्थानों में ही अनन्तानुबंधी का उदय होता है तथा मिश्रदृष्टि में मरण नहीं होने से अपर्याप्त अवस्थाभावी औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण ये तीन योग भी संभव नहीं होने से दस योग पाये जाते हैं। अतएव अंकस्थापना इस प्रकार समझना चाहिये—

योग	कषाय	वेद	युगल	इन्द्रिय-अविरति	कायवध
१०	४	३	२	५	६

ऊपर बताई गई अंकस्थापना के अंकों का क्रमशः गुणा करने पर नौ बंधहेतुओं के (७२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।

अब दस बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में कायद्विक को ग्रहण करने पर दस हेतु होते हैं। छह काय के द्विकसंयोग में पन्द्रह भंग होने से कायवध के स्थान पर छह के बदले पन्द्रह रखना चाहिये और उसके बाद अनुक्रम से अंकों का गुणा करने पर (१८०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

२. अथवा भय को मिलाने से भी दस हेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (७२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।[1]

३. अथवा जुगुप्सा के मिलाने से भी दस हेतु होंगे। उनके भी पूर्ववत् (७२००) बहत्तर सौ भग होते हैं।

---

१ भय, जुगुप्सा को मिलाने पर भंगों की वृद्धि नहीं होती है किन्तु कायवध को मिलाने पर भंगों की वृद्धि होती है। जैसे कायद्विकवध गिना गया हो तो उसके पन्द्रह भंग होते हैं। अतः पूर्वोक्त अंकस्थापना में कायवध के स्थान पर पन्द्रह का अंक रखकर गुणा करना चाहिए। इसी प्रकार जब तीन, चार, पांच या छह काय गिनी गई हों, तब उनके अनुक्रम से बीस, पन्द्रह, छह और एक संख्या कायवध के स्थान पर रखकर गुणा करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार दस बंधहेतु के तीन प्रकार हैं। उनके कुल भंग (१८,००० × ७,२०० × ७,२०० = ३२४००) बत्तीस हजार चार सौ जानना चाहिये।

उक्त प्रकार से दस बंधहेतुओं के भंगों को बतलाने के पश्चात् अब ग्यारह बंधहेतुओं के प्रकार और उनके भंगों का निर्देश करते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ बंधहेतुओं में कायत्रिकवध को मिलाने पर ग्यारह हेतु होते हैं। छह काय के त्रिकसंयोग में बीस भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर बीस रख कर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२,४०००) चौबीस हजार भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायद्विक का वध मिलाने से भी ग्यारह हेतु होते हैं और छह काय के द्विकसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर पन्द्रह का अंक रख कर अंकों का क्रमशः गुणाकार करने पर (१८०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायद्विक के वध को मिलाने पर भी ग्यारह हेतु होते हैं। उनके भी ऊपर कहे गये अनुसार (१८०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा को मिलाने पर भी ग्यारह हेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (७,२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार ग्यारह बंधहेतु के चार प्रकार हैं। जिनके कुल भंगों का योग (२,४००० + १८,००० + १८,००० + ७,२०० = ६७२००) सड़सठ हजार दो सौ है।

अब बारह हेतु और उनके भंगों का कथन करते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में चार काय का वध मिलाने पर बारह हेतु होते हैं। छह काय के चतुष्कसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान में पन्द्रह को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१८०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायत्रिकवध को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं और छह काय के त्रिकसंयोग में बीस भंग होते हैं। अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायवध के स्थान पर बीस का अंक रखकर क्रमशः अंकों का गुणा करने पर (२४,०००) चौबीस हजार भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायत्रिकवध को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं। इनके भी ऊपर कहे गये अनुसार (२४,०००) चौबीस हजार भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायद्विकवध को मिलाने पर भी बारह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् (१८,०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार बारह हेतु चार प्रकार से होते हैं। इनके कुल भंग (१८,०००+२४,००० + २४,०००+१८,००० = ८४,०००) चौरासी हजार भंग होते हैं।

अब तेरह हेतु के भंगों को बतलाते हैं--

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में कायपंचकवध को मिलाने पर तेरह हेतु होते हैं। छह काय के पंचसंयोग में छह भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर छह का अंक रखकर क्रमपूर्वक गुणा करने से (७,२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायचतुष्कवध को मिलाने से भी तेरह हेतु होते हैं। चार के संयोग में कायवध के पन्द्रह भंग होते हैं। उन पन्द्रह भंगों को कायवध के स्थान पर रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१८,०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

३. जुगुप्सा और कायचतुष्कवध के मिलाने से भी होने वाले तेरह हेतुओं के (१८,०००) अठारह हजार भंग जानना चाहिये।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायत्रिकवध को मिलाने से भी तेरह हेतु होते हैं। कायत्रिकवध के संयोग में छह काय के बीस भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर बीस का अंक रखकर क्रमशः अंकों का गुणा करने पर (२४,०००) चौबीस हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार से तेरह बंधहेतु चार प्रकार से बनते हैं और उनके कुल भंगों का योग (७,२००+१८,०००+१८,०००+२४,०००=६७,२००) सड़सठ हजार दो सौ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब चौदह बंधहेतुओं का विचार करते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में छहकाय का वध मिलाने से चौदह हेतु होते हैं। छहकाय के संयोग में एक ही भंग होता है। अतः कायवध-स्थान पर एक अंक रखकर पूर्वोक्त क्रमानुसार अंकों का गुणा करने पर (१२००) बारह सौ भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायपंचकवध को मिलाने पर भी चौदह हेतु होते हैं। कायवध के पंचसंयोगी भंग छह होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर पांच का अंक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (७,२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और पंचकायवध के मिलाने से होने वाले चौदह हेतुओं के भी पूर्वोक्त प्रकार से (७,२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायचतुष्कवध को मिलाने से भी चौदह हेतु होते हैं। यहाँ कायवध के स्थान पर पन्द्रह का अंक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१८,०००) अठारह हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार चौदह बंधहेतु चार प्रकार से बनते हैं और उनके कुल भंगों का योग (१,२०० ७,२००+७,२००+१८,०००=३३,६००) तेतीस हजार छह सौ है।

अब पन्द्रह बंधहेतु और उनके भंगों का निर्देश करते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ बंधहेतुओं में भय और छहकायवध को मिलाने पर पन्द्रह हेतु होते हैं। छह काय का संयोगी भंग एक होता है। अतः कायहिंसा के स्थान पर एक अंक रखकर पूर्वोक्त अंकों का क्रमशः गुणा कार करने पर (१,२००) बारह सौ भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा और छहकायवध को मिलाने पर भी पन्द्रह हेतु होते हैं। उनके भी ऊपर कहे गये अनुसार (१,२००) बारह सौ भंग होते हैं।

३. अथवा भय, जुगुप्सा और कायपंचकवध मिलाने से भी पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। काय के पंचसंयोगी भंग छह हैं। अतः कायवध के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर छह का अंक रखकर अनुक्रम में अंकों का गुणा करने पर (७,२००) बहत्तर सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार पन्द्रह हेतु तीन प्रकार से बनते हैं और उनके कुल भंग (१,२००+१,२००+७,२००=९,६००) छियानवै सौ होते हैं।

अब सोलह बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

पूर्वोक्त नौ बंधहेतुओं में भय, जुगुप्सा और छहों काय का वध मिलाने से सोलह हेतु होते हैं। काय का छह के संयोग में एक भंग होता है। उस एक भंग को कायवध के स्थान पर रखकर क्रमशः अंकों का गुणा करने से (१२००) बारह सौ भंग होते हैं। विकल्प संभव नहीं होने से सोलह हेतु के अन्य प्रकार नहीं बनते हैं।

इस प्रकार मिश्रगुणस्थान में नौ से सोलह तक के बंधहेतु होते हैं। इनके कुल भंगों का जोड़ तीन लाख, दो हजार, चार सौ (३,०२,४००) है।

मिश्रगुणस्थान के बंधहेतुओं के प्रकारों और उनके भंगों का सरलता से बोध कराने वाला प्रारूप इस प्रकार है—

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	विकल्प प्रकार के भंग	कुल भंगसंख्या
९	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ इन्द्रिय-असंयम, अप्रत्या० तीन क्रोधादि, १ कायवध	७२००	७२००
१०	पूर्वोक्त नौ, कायद्विकवध	१८०००	
१०	,, ,, भय	७२००	
१०	,, ,, जुगुप्सा	७२००	३२४००
११	पूर्वोक्त नौ, कायत्रिकवध	२४०००	
११	,, ,, कायद्विकवध, भय	१८०००	
११	,, ,, ,, जुगुप्सा	१८०००	
११	,, ,, भय, जुगुप्सा	७२००	६७२००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध-हेतु	हेतुओं के विकल्प	विकल्प-प्रकार के भंग	कुल भंगसंख्या
१२	पूर्वोक्त नौ, कायचतुष्कवध	१८०००	
१२	,, ,, कायत्रिकवध, भय	२४०००	
१२	,, ,, ,, जुगुप्सा	२४०००	
१२	,, ,, कायद्विकवध, भय, जुगुप्सा	१८०००	८४०००.
१३	पूर्वोक्त नौ, कायपंचकवध	७२००	
१३	,, ,, कायचतुष्कवध, भय	१८०००	
१३	,, ,, ,, जुगुप्सा	१८०००	
१३	,, ,, कायत्रिकवध, भय, जुगुप्सा	२४०००	६७२००
१४	पूर्वोक्त नौ, कायषट्कवध	९२००	
१४	,, ,, कायपंचकवध, भय	७२००	
१४	,, ,, ,, जुगुप्सा	७२००	
१४	,, ,, कायचतुष्कवध, भय, जुगुप्सा	१८०००	३३६००
१५	पूर्वोक्त नौ, कायषट्कवध, भय	१२००	
१५	,, ,, ,, जुगुप्सा	१२००	
१५	,, ,, कायपंचकवध, भय जुगुप्सा	७२००	९६००
१६	पूर्वोक्त नौ, कायषट्कवध, भय, जुगुप्सा	१२००	१२००
		कुल भंग संख्या	३०२४००

इस प्रकार मिश्रगुणस्थान के बंधहेतुओं के कुल भंगों का जोड़ तीन लाख दो हजार चार सौ (३,०२,४००) होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वोक्त प्रकार से मिश्रगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों का कथन जानना चाहिए।

अब चौथे अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में भी मिश्रगुणस्थान की तरह नौ से सोलह तक बंधहेतु हैं। लेकिन उनके भंगों का कथन करने से पूर्व जो विशेषता है, उसको बतलाते हैं—

चत्तारि अविरए चय थीउदए विउव्विमीसकम्मइया।
इत्थिनपुंसगउदए ओरालियमीसगो जन्नो ॥१२॥

शब्दार्थ—**चत्तारि**—चार, **अविरए**—अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में, **चय**—कम करना चाहिए, **थीउदए**—स्त्रीवेद के उदय में, **विउव्विमीसकम्मइया**—वैक्रियमिश्र, कार्मणयोग, **इत्थिनपुंसगउदए**—स्त्री और नपुंसक वेद के उदय में, **ओरालियमीसगो**—औदारिकमिश्र, **जत्**—क्योंकि, **नो**—नहीं होता है।

गाथार्थ—अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में (वेद के साथ योगों का गुणा करके) चार रूप कम करना चाहिए। क्योंकि स्त्रीवेद के उदय में वैक्रियमिश्र और कार्मणयोग एवं स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेद के उदय में औदारिकमिश्रयोग नहीं होता है।

विशेषार्थ—गाथा में अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतुओं के विचार को प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम एक आवश्यक विशेषता का दिग्दर्शन कराया है कि—

'चत्तारि अविरए चय' अर्थात् जैसे सासादनगुणस्थान के बंधहेतु के भंगों को बतलाने के लिए वेद के साथ योगों का गुणाकार करके एक रूप कम करने का संकेत किया है, उसी प्रकार यहाँ भी वेद के साथ योगों का गुणा करके गुणनफल में से चार रूप कम कर देना चाहिए।

चार रूप कम करने का कारण यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में 'थीउदए विउव्विमीसकम्मइया जन्नो' स्त्रीवेद के उदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में वैक्रियमिश्र और कार्मण यह दो योग नहीं होते हैं। क्योंकि वैक्रियमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी स्त्रीवेदी में अविरतसम्यग्दृष्टि कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता है। चतुर्थ गुणस्थान को लेकर जाने वाला जीव पुरुष होता है, स्त्री नहीं होता है। जैसाकि सप्ततिकाचूर्णि में वैक्रियमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी अविरतसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी वेद में भंगों का विचार करते हुए कहा है कि—

'इत्थ इत्थिवेदो ण लब्भइ, कहं ? इत्थिवेयगेसु न उव्वज्जइ त्ति काउमिति।'

अर्थात् इन दो योगों में चौथे गुणस्थान में स्त्रीवेद नहीं होता है। क्योंकि वे स्त्रीवेदियों में उत्पन्न नहीं होते हैं। यानी इन दो योगों में वर्तमान स्त्रीवेद के उदयवाले जीवों के चतुर्थ गुणस्थान नहीं होता है।

लेकिन यह कथन अनेक जीवों की अपेक्षा सामान्य से समझना चाहिए। अन्यथा किसी समय स्त्रीवेदी में भी उनकी उत्पत्ति सम्भव है। जैसाकि सप्ततिकाचूर्णि में बताया है कि—

'कयाइ होज्ज इत्थिवेयगेसु वि त्ति।'

कदाचित् स्त्रीवेदी में भी चौथे गुणस्थान में यह दो योग घटित होते हैं।

इसके अतिरिक्त स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदय रहने पर औदारिकमिश्र योग नहीं होता है—'ओरालियमीसगो जन्नो'। इसका कारण यह है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदयवाले तिर्यंच और मनुष्यों में अविरतसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। लेकिन यह कथन भी अनेक जीवों की अपेक्षा समझना चाहिए। यानी कदाचित् किसी जीव में यह घटित नहीं भी होता है। लेकिन इससे कुछ दोष प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि स्त्रीवेद के उदयवाले मल्लि तीर्थंकर, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि चौथा गुणस्थान लेकर मनुष्यगति में उत्पन्न हुए हैं और उनको विग्रहगति में कार्मणकाययोग एव अपर्याप्त अवस्था में औदारिकमिश्रकाययोग संभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार स्त्रीवेद में औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण यह तीन योग और नपुंसकवेद में औदारिकमिश्र काययोग घटित नहीं होता है। इसलिए वेदों के साथ योगों का गुणा करके गुणनफल में से चार रूपों को कम करने का विधान बताया है।

इस प्रकार से अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों विषयक विशेषता का निर्देश करने के पश्चात् अब जघन्य से उत्कृष्ट पर्यन्त के बंधहेतुओं के (नौ से सोलह हेतुओं तक के) भंगों की प्ररूपणा करते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में जघन्यपदभावी नौ बंधहेतु होते हैं। वे इस प्रकार हैं—छह काय में से कोई एक काय का वध, पांच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय की अविरति, युगलद्विक में से एक युगल, वेदत्रिक में से एक वेद, अप्रत्याख्यानावरणादि कोई भी क्रोधादि तीन कषाय, तेरह योग में से कोई एक योग। इस प्रकार कम से कम नौ बंधहेतु एक समय में एक जीव के होते हैं और एक समय में अनेक जीवों की अपेक्षा भंगों की संख्या प्राप्त करने के लिए अंकस्थापना निम्नप्रकार से करना चाहिए—

कषाय	युगलद्विक	इन्द्रिय-अविरति	कायवध	योग	वेद
४	२	५	६	१३	३

तीन वेदों के साथ तेरह योगों का गुणा करने पर उनतालीस ३९ होते हैं। उनमें से चार कम करने पर पैंतीस रहे। उनको छह काय से गुणा करने पर (३५ × ६ = २१०) दो सौ दस हुए। उनको पांच इन्द्रियों को अविरति के साथ गुणा करने पर (२१० × ५ — १०५०) एक हजार पचास होते हैं। उनको युगलद्विक के साथ गुणा करने पर (१०५० × २ = २१००) इक्कीस सौ हुए और उनको भी चार कषाय के साथ गुणा करने पर (२१०० × ६ = ८४००) चौरासी सौ होते हैं।

इस प्रकार नौ बंधहेतुओं के अनेक जीवों के आश्रय से (८४००) चौरासी सौ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब दस बंधहेतु के भंग बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में कायद्विकवध को मिलाने पर दस हेतु होते हैं। छह काय के द्विकसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। इसलिये कायवध के स्थान पर पन्द्रह रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२१,०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

२. अथवा भय को मिलाने से भी दस हेतु होते हैं। उनके भंग पूर्ववत् (८,४००) चौरासी सौ होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी दस बंधहेतु होते हैं। उनके भी भंग (८,४००) चौरासी सौ होते हैं।

इस प्रकार दस बंधहेतु तीन प्रकार से होते हैं। उनके कुलभंगों का योग (२,१०००+८,४००+८,४००=३७,८००) सैंतीस हजार आठ सौ होता है।

अब ग्यारह बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ बंधहेतुओं में कायत्रिकवध को मिलाने से ग्यारह हेतु होते हैं और छह काय के त्रिकसंयोग में बीस भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान में बीस के अंक को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२८,०००) भंग होते हैं।

२. अथवा भय और कायद्विकवध को मिलाने से भी ग्यारह हेतु होते हैं। कायद्विकवध के पन्द्रह भंग होने से उनको कायवध के स्थान पर रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२१०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायद्विकवध को मिलाने से भी ग्यारह हेतु होते हैं। उनके भी ऊपर कहे गये अनुसार (२१०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

४. अथवा भय और जुगुप्सा को मिलाने से भी ग्यारह हेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (८४००) चौरासी सौ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार ग्यारह हेतु चार प्रकार से होते हैं और उनके कुल भंगों का योग (२८,००० × २१,००० × २,१००० × ८४०० = ७८,४००) अठहत्तर हजार चार सौ है।

ग्यारह हेतुओं के भंगों का कथन करने के पश्चात् अब बारह हेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ बंधहेतुओं में चार काय का वध मिलाने से बारह हेतु होते हैं। छह काय के चतुष्कसंयोग में पन्द्रह भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान में पन्द्रह को ग्रहण कर पूर्वोक्त क्रमानुसार अंकों का गुणा करने पर (२१,०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

२. अथवा कायत्रिकवध और भय को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं। यहाँ कायवध के स्थान में बीस को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२८,०००) अट्ठाईस हजार भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा और कायत्रिकवध को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं। इनके ऊपर कहे गये अनुरूप (२८,०००) अट्ठाईस हजार भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायद्विकवध को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं। यहाँ कायवधस्थान में पन्द्रह को रखकर अंकों का परस्पर गुणा करने पर पूर्ववत् (२१,०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार बारह हेतु चार प्रकार से होते हैं और इन चार प्रकार के कुल भंगों का योग (२१,००० + २८,००० + २८,००० + २१,००० = ९८,०००) अट्ठानवै हजार है।

अब तेरह बंधहेतुओं का विचार करते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ बंधहेतुओं में कायपंचकवध को लेने पर तेरह हेतु होते हैं। छह काय के पंचसहयोगी भंग छह होते हैं। अतः कायहिंसा के स्थान पर छह को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (८,४००) चौरासी सौ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अथवा कायचतुष्कवध और भय को मिलाने से भी तेरह हेतु होते हैं। अतः कायवधस्थान में पन्द्रह को रखकर अंकों का गुणा करने पर (२१,०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायचतुष्कवध को मिलाने पर भी तेरह बंधहेतु होते हैं। इनके भी ऊपर कहे अनुसार (२१,०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायत्रिकवध को मिलाने पर भी तेरह बंधहेतु होते हैं। कायवधस्थान में त्रिकसंयोगी बीस भंग रखकर क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२८,०००) अट्ठाईस हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार तेरह हेतु चार प्रकार से होते हैं। उनके कुल भंगों का योग (८,४००+२१,०००+२१,०००+२८,०००=७८,४००) अठहत्तर हजार चार सौ है।

अब चौदह बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में छह काय का वध मिलाने पर चौदह हतु होते हैं। छह काय का षट्संयोगी भंग एक होता है। अतः कायवधस्थान में एक अंक को ग्रहण करके पूर्वोक्त प्रकार से अंकों का गुणा करने पर (१,४००) चौदह सौ भंग होते हैं।

२ अथवा कायपंचकवध और भय को ग्रहण करने से भी चौदह बंधहेतु होते हैं। छह काय के कायपंचकभंग छह होते हैं। अतः कायवध के स्थान में छह को रखकर अंकों का गुणा करने पर (८,४००) चौरासी सौ भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायपंचकवध को ग्रहण करने से भी चौदह हेतु होते हैं। इनके ऊपर कहे गये अनुसार (८,४००) चौरासी सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायचतुष्कवध को ग्रहण करने से भी चौदह हेतु होते हैं। यहाँ कायवधस्थान में पन्द्रह को रखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (२१,०००) इक्कीस हजार भंग होते हैं।

इस प्रकार चौदह बंधहेतु चार प्रकार से होते हैं। इनके कुल भंगों का योग (१,४००+८,४००+८,४००+२१,०००=३६,२००) उनतालीस हजार दो सौ है।

अब पन्द्रह बंधहेतु और उनके भंगों का विचार करते हैं—

१. पूर्वोक्त नौ हेतुओं में भय और छहकायवध को ग्रहण करने पर पन्द्रह हेतु होते हैं। यहाँ कायवधस्थान पर एक अंक को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणाकार करने पर (१४००) चौदह सौ भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा और छहकायवध को ग्रहण करने से भी पन्द्रह हेतु होते हैं। इनके भी ऊपर बताये गये अनुसार (१,४००) चौदह सौ भंग होते हैं।

३. अथवा भय, जुगुप्सा और कायपंचकवध को मिलाने पर भी पन्द्रह हेतु होते हैं। यहाँ कायवधस्थान में छह का अंक रखकर पूर्वोक्त क्रमानुसार अंकों का परस्पर गुणा करने पर (८,४००) चौरासी सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार पन्द्रह हेतु तीन प्रकार से होते हैं। इनके कुल भंगों का जोड़ (१,४००+१,४००+८,४००=११,२००) ग्यारह हजार दो सौ है।

अब सोलह बंधहेतुओं का कथन करते हैं—

पूर्वोक्त नौ हेतुओं में भय, जुगुप्सा और छहकाय को मिलाने पर सोलह हेतु होते हैं। यहाँ छह काय का षट्संयोगी भंग एक होने से कायवधस्थान पर एक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१,४००) चौदह सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में नौ से लेकर सोलह बंधहेतु तक के कुल भंग तीन लाख बावन हजार आठ सौ (३,५२,८००) होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वोक्त प्रकार से अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों को जानना चाहिए। सरलता से बोध करने के लिए जिनका प्रारूप इस प्रकार है—

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंगसंख्या
९	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ इन्द्रिय-असंयम, ३ कषाय, १ कायवध	८४००	८४००
१०	पूर्वोक्त नौ, कायद्विकवध	२१०००	
१०	,, ,, भय	८४००	
१०	,, ,, जुगुप्सा	८४००	३७८००
११	पूर्वोक्त नौ, कायत्रिकवध	२८०००	
११	,, ,, कायद्विकवध, भय	२१०००	
११	,, ,, ,, जुगुप्सा	२१०००	
११	,, ,, भय, जुगुप्सा	८४००	७८४००
१२	पूर्वोक्त नौ, कायचतुष्कवध	२१०००	
१२	,, ,, कायत्रिकवध, भय	२८०००	
१२	,, ,, ,, जुगुप्सा	२८०००	
१२	,, ,, कायद्विकवध, भय, जुगुप्सा	२१०००	९८०००
१३	पूर्वोक्त नौ, कायपंचकवध,	८४००	
१३	,, ,, कायचतुष्कवध, भय	२१०००	
१३	,, ,, ,, जुगुप्सा	२१०००	
१३	,, ,, कायत्रिकवध, भय, जुगुप्सा	२८०००	७८४००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध हेतु	हेतुओं के विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंग संख्या
१४	पूर्वोक्त नौ, कायषट्कवध	१४००	
१४	,, ,, कायपंचकवध, भय	८४००	
१४	,, ,, ,, जुगुप्सा	८४००	
१४	,, ,, कायचतुष्कवध, भय, जुगुप्सा	२१०००	३९२००
१५	पूर्वोक्त नौ, कायषट्कवध, भय	१४००	
१५	,, ,, ,, जुगुप्सा	१४००	
१५	,, ,, कायपंचकवध, भय, जुगुप्सा	८४००	११२००
१६	पूर्वोक्त नौ, कायषट्कवध, भय जुगुप्सा	१४००	१४००
		कुल भंगों का योग	३५२८००

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधहेतुओं के कुल भंगों का जोड़ (३,५२,८००) तीन लाख बावन हजार आठ सौ है।

अनेक जीवों की अपेक्षा बहुलता से इन नौ आदि बंधहेतुओं के भंगों का निर्देश किया है। क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान को लेकर स्त्रीवेदी रूप में मल्लिकुमारी, राजीमती, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि के उत्पन्न होने के उल्लेख मिलते हैं। इस अपेक्षा से चतुर्थ गुणस्थान में स्त्रीवेदी के विग्रहगति में कार्मण और उत्पत्तिस्थान में औदारिकमिश्र यह दो योग भी घट सकते हैं। अतएव इस दृष्टि से स्त्रीवेदी के मात्र वैक्रिय-मिश्र और नपुंसकवेदी के पूर्व में कहे गये अनुसार औदारिकमिश्र इस तरह दो योग होते ही नहीं हैं, जिससे तीन वेद को तेरह योग से गुणा कर चार के बदले दो भंग कम करने पर शेष सैंतीस (३७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंग शेष रहते हैं और पूर्वोक्त रीति से स्थापित अंकों का परस्पर गुणा करने से नौ बंधहेतुओं के भंगों की संख्या चौरासी सौ के बदले अठासी सौ अस्सी होती है और काय से गुणा किये बिना के जो पहले चौदह सौ भंग किये हैं, उनके बदले चौदह सौ अस्सी करना चाहिए और उसके बाद उन चौदह सौ अस्सी को जहाँ छह कायवध हो, वहाँ तो उतने ही और जहाँ एक अथवा पांच काय का वध हो वहाँ छह गुणा, दो अथवा चार काय का वध हो वहाँ पन्द्रह गुणा और जहाँ तीन काय का वध हो वहाँ बीस गुणा करके भंग संख्या का विचार करना चाहिए।

सप्ततिकाचूर्णि में कहा है कि चौथा गुणस्थान लेकर कोई जीव कदाचित् देवी रूप में उत्पन्न होता है। अतएव उस मत के अनुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी के तेरह-तेरह और नपुंसकवेदी के औदारिक-मिश्र के बिना बारह योग होने से पहले तीन वेद को तेरह योग से गुणा कर प्राप्त संख्या में से एक रूप कम करने पर अड़तीस (३८) शेष रहते हैं और उनके साथ स्थापित किये गये शेष अंकों का परस्पर गुणा करने से प्रत्येक बंधहेतु के और उनके विकल्पों के जो भंग होते हैं वे पूर्व में बताये गये सासादनगुणस्थान के भंगों के समान हैं।

अब पांचवें देशविरतगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

देशविरतगुणस्थान के बंधहेतु और भंग

देशविरतगुणस्थान में जघन्य आठ और उत्कृष्ट चौदह बंधहेतु होते हैं। देशविरत श्रावक त्रसकाय की अविरति से विरत होता है। अतएव यहाँ पांच काय की हिंसा होती है। पांच काय की हिंसा के द्विक-संयोग में दस, त्रिकसंयोग में दस और चतुष्कसंयोग में पांच और पंचसंयोग में एक भंग होता है। अतएव जितने काय की हिंसा आठ आदि हेतुओं में ग्रहण की हो और उसके संयोगी जितने भंग हों, उन भंगों के दर्शक अंक कायहिंसा के स्थान पर रखना चाहिए तथा यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान पर्याप्त अवस्थाभावी होने से अपर्याप्त अवस्थाभावी औदारिक-मिश्र और कार्मण तथा चौदह पूर्व के अध्ययन का अभाव होने से आहारकद्विक कुल चार योग इसमें नहीं होते हैं। इसलिए औदारिक-मिश्र, कार्मण और आहारकद्विक ये चार योग नहीं होने से इस गुण-स्थान में शेष ग्यारह योग जानना चाहिए।

अब बंधहेतुओं के भंगों का विचार करते हैं—

जघन्यपदभावी आठ बंधहेतु इस प्रकार हैं—पांच काय में से किसी एक काय का वध, पांच इन्द्रिय की अविरति में से किसी एक इन्द्रिय की अविरति, युगलद्विक में से एक युगल, वेदत्रिक में से कोई एक वेद, अप्रत्याख्यानावरणकषाय के उदय का अभाव होने से प्रत्याख्या-नावरण और संज्वलन की कोई क्रोधादि दो कषाय और ग्यारह योगों में से कोई एक योग, इस प्रकार एक समय में एक जीव को आठ बंध-हेतु होते हैं।

तत्पश्चात् पांच काय के एक-एक संयोग में पांच भंग होते हैं, इस-लिए कायवध के स्थान पर पांच भंग होते हैं। इसलिए कायवध के स्थान पर पांच, वेद के स्थान पर तीन, युगल के स्थान पर दो, कषाय के स्थान पर चार, इन्द्रिय-अविरत के स्थान पर पांच और योग के स्थान पर ग्यारह का अंक रखना चाहिए। जिसका रूपक इस प्रकार का होगा—

योग	कषाय	वेद	युगल	इन्द्रिय-अविरति	कायहिंसा
११	४	३	२	५	५

इन अंकों का परस्पर गुणा करने पर एक समय में अनेक जीवों की अपेक्षा भंग उत्पन्न होते हैं।

गुणाकार इस प्रकार करना चाहिए कि किसी भी इन्द्रिय की अविरति वाला किसी भी काय का वध करने वाला होता है। अतः पांच इन्द्रिय की अविरति के साथ पांच काय का गुणा करने पर (२५) पच्चीस हुए। इन पच्चीस को युगलद्विक से गुणा करने पर (५०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पचास हुए। ये पचास पुरुषवेद के उदय वाले, दूसरे पचास स्त्रीवेद के और तीसरे पचास नपुंसकवेद के उदयवाले होते हैं। अतः पचास को तीन वेद से गुणा करने पर (५०×३=१५०) एक सौ पचास भंग हुए। ये एक सौ पचास क्रोधकषायी, दूसरे एक सौ पचास मान-कषायी, तीसरे उतने ही माया कषायी भी और चौथे उतने ही लोभ-कषायी होते हैं। इसलिए एक सौ पचास को कषायचतुष्क के साथ गुणा करने पर (१५०×४=६००) छह सौ भंग होते हैं। ये छह सौ सत्यमनोयोगी, दूसरे छह सौ असत्यमनोयोगी आदि इस प्रकार ग्यारह योगों के द्वारा छह सौ को गुणा करने पर (६,६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार से आठ बंधहेतु एक समय में अनेक जीवों की अपेक्षा छियासठ सौ प्रकार से होते हैं। यह जघन्यपदभावी आठ बंधहेतुओं के भंग जानना चाहिये।

अब नौ हेतु और उनके भंग बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त आठ बंधहेतुओं में कायद्विकवध ग्रहण करने से नौ होते हैं। पांच काय के द्विकसंयोग में दस भंग होते हैं। अतः कायवध के स्थान पर दस को रखकर क्रमशः अंकों का गुणा करने पर १३,२०० तेरह हजार दो सौ भंग हुए।

२. अथवा भय को मिलाने पर नौ हेतु होते हैं। यहाँ कायवधस्थान पर पांच ही रखने पर उनके भंग पूर्ववत् (६,६००) छियासठ सौ होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी नौ बंधहेतु होते हैं। उनके भी ऊपर बताये गये अनुसार (६,६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार नौ बंधहेतु के तीन प्रकार हैं। इनके कुल भंगों का योग (१३,२००+६,६००+६६००=२६४००) छब्बीस हजार चार सौ होता है।

अब दस बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त आठ बंधहेतुओं में कायत्रिक का वध मिलाने से दस हेतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते है। पांच काय के त्रिकसंयोग में दस भंग होते हैं। अतः कायहिंसा के स्थान पर दस का अंक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१३,२००) तेरह हजार दो सौ भंग होते हैं।

२. अथवा कायद्विकवध और भय को मिलाने से भी दस हेतु होते हैं। यहाँ भी कायहिंसा के स्थान पर पांच काय के द्विकसंयोगी दस भंग होने से दस का अंक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१३,२००) तेरह हजार दो सौ भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायद्विक के वध को मिलाने से बनने वाले दस बंधहेतुओं के भी ऊपर बताये गये प्रकार से (१३,२००) तेरह हजार दो सौ भंग होते हैं।

४. अथवा भय और जुगुप्सा के मिलाने से भी दस बंधहेतु होते हैं। उनके पूर्ववत् (६६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

इस तरह दस बंधहेतु के चार प्रकार हैं। उनके कुल भंग (१३,२००+१३,२००+१३,२००+६,६००=४६२००) छियालीस हजार दो सौ होते हैं।

दस बंधहेतु के प्रकार और उनके भंगों का विचार करने के पश्चात् अब ग्यारह बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त आठ बंधहेतुओं में चार काय के वध को मिलाने से ग्यारह हेतु होते हैं। पांच काय के चतुष्कसंयोगी पांच भंग होने से काय-हिंसा के स्थान पर पांच का अंक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (६,६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

२. अथवा कायत्रिकवध और भय को मिलाने से भी ग्यारह हेतु होते हैं। यहाँ कायहिंसा के स्थान पर दस के अंक को रखकर अंकों का गुणा करने पर (१३,२००) तेरह हजार दो सौ भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायत्रिकवध मिलाने से भी ग्यारह हेतु होते हैं। उनके भी ऊपर बताये गये अनुसार (१३,२००) तेरह हजार दो सौ भंग जानना चाहिये।

४. अथवा भय, जुगुप्सा और कायद्विकवध को मिलाने पर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारह हेतु होते हैं। यहाँ भी कायहिंसा के स्थान पर दस का अंक रख कर परस्पर अंकों का गुणा करने पर (१३,२००) तेरह हजार दो सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार ग्यारह हेतु चार प्रकार से होते हैं। उनके कुल भंगों का योग (६६००+१३,२००+१३,२००+१३,२००=४६२००) छियालीस हजार दो सौ है।

अब बारह हेतु और उनके भंगों का विचार करते हैं—

१. पूर्वोक्त आठ हेतु में पांच काय की हिंसा को ग्रहण करने पर बारह हेतु होते हैं। पांच काय का पंचसयोगी एक ही भंग होने से कायहिंसा के स्थान पर एक को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१,३२०) तेरह सौ बीस भंग होते हैं।

२. अथवा कायचतुष्कवध और भय को मिलाने पर बारह हेतु होते हैं। पांच काय के चतुष्कसंयोगी पांच भंग होने से कायहिंसा के स्थान पर पांच रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (६,६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

३. अथवा जुगुप्सा और कायचतुष्कवध को मिलाने पर भी बारह हेतु होते हैं। इनके भी ऊपर बताये गये अनुसार (६,६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

४. अथवा कायत्रिकवध और भय, जुगुप्सा को मिलाने से भी बारह हेतु होते हैं। पांच काय के त्रिकसंयोग में दस भंग होने से कायहिंसा के स्थान पर दस को रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१३२००) तेरह हजार दो सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार बारह हेतु चार प्रकार से होते हैं। उनके कुल भंग (१,३२०+६,६००+६,६००+१३,२००=२७,७२०) सत्ताईस हजार सात सौ बीस होते हैं।

अब तेरह बंधहेतु का विचार करते हैं—

१. पूर्वोक्त आठ बंधहेतुओं में पांच काय का वध और भय को मलाने पर तेरह बंधहेतु होते हैं। पांच काय का पंचसंयोगी भंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक होने से काय के स्थान पर एक को रखकर पूर्वोक्त अंकों का क्रमशः गुणा करने पर भंग (१,३२०) तेरह सौ बीस होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा और पांच काय का वध मिलाने से भी तेरह बंधहेतु के ऊपर बताये गये अनुसार (१,३२०) तेरह सौ बीस भंग होते हैं।

३. अथवा भय, जुगुप्सा और कायचतुष्क का वध मिलाने पर तेरह हेतु होते हैं। यहाँ कायस्थान पर पांच का अंक रखकर क्रमशः अंकों का गुणा करने पर (६,६००) छियासठ सौ भंग होते हैं।

इस प्रकार तेरह बंधहेतु तीन प्रकार से होते हैं और उनके कुल भंगों का योग (१,३२०+१,३२०+६,६००=९,२४०) बानवे सौ चालीस होता है।

उक्त प्रकार से तेरह बंधहेतु के भंग बतलाने के बाद अब चौदह बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

पूर्वोक्त आठ बंधहेतु में पांच काय का वध, भय और जुगुप्सा को मिलाने पर चौदह बंधहेतु होते हैं। पांच काय का पंचसंयोगी एक भंग होने से कायस्थान में एक अंक रखकर पूर्वोक्त क्रम से अंकों का गुणा करने पर (१,३२०) तेरह सौ बीस भंग होते हैं।

चौदह बंधहेतुओं में विकल्प नहीं होने के यह एक ही भंग होता है।

इस प्रकार पांचवें देशविरतगुणस्थान में आठ से चौदह पर्यन्त के बंधहेतुओं के कुल भंगों का योग एक लाख त्रेसठ हजार छह सौ अस्सी (१, ६३,६८०) होता है।

पांचवें देशविरतगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों का बोधक प्रारूप इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंगसंख्या
८	१ वेद, १ योग, १ युगल १ इन्द्रिय का असंयम, २ कषाय, १ कायवध	६,६००	६,६००
९	पूर्वोक्त आठ, कायद्विकवध	१३,२००	
९	,, ,, भय	६,६००	
९	,, ,, जुगुप्सा	६,६००	२६४००
१०	पूर्वोक्त आठ, कायत्रिकवध	१३,२००	
१०	,, ,, कायद्विकवध, भय	१३,२००	
१०	,, ,, ,, जुगुप्सा	१३,२००	
१०	,, ,, भय, जुगुप्सा	६६००	४६२००
११	पूर्वोक्त आठ, कायचतुष्कवध	६६००	
११	,, ,, कायत्रिकवध, भय	१३२००	
११	,, ,, ,, जुगुप्सा	१३२००	
११	,, ,, कायद्विकवध, भय, जुगुप्सा	१३२००	४६२००
१२	पूर्वोक्त आठ, कायपंचकवध	१३२०	
१२	,, ,, कायचतुष्कवध, भय	६६००	
१२	,, ,, ,, जुगुप्सा	६६००	
१२	,, ,, कायत्रिकवध, भय, जुगुप्सा	१३२००	२७७२०
१३	पूर्वोक्त आठ, कायपंचकवध, भय	१३२०	
१३	,, ,, ,, जुगुप्सा	१३२०	
१३	,, ,, कायचतुष्कवध, भय, जुगुप्सा	६६००	९२४०
१४	पूर्वोक्त आठ, कायपंचकवध, भय, जुगुप्सा	१३२०	१३२०
		कुल भंग	९६३६८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशविरतगुणस्थान के बंधहेतुओं के भंगों का कुल जोड़ (१,६३,६८०) एक लाख त्रेसठ हजार छह सौ अस्सी है।

इस प्रकार से अभी तक नाना जीवों की अपेक्षा पहले मिथ्यात्व से लेकर पांचवें देशविरतगुणस्थान पर्यन्त पांच गुणस्थानों के बंधहेतु और उनके भंगों का विचार किया गया। अब प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत नामक छठे और सातवें गुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं। इनमें पांच से सात तक बंधहेतु होते हैं। जिनके भंगों को बतलाने के लिये योग के सम्बन्ध में जो विशेषता है, उसका निर्देश करते हैं।

प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों के बंधहेतुओं के भंग

दोरूवाणि पमत्ते चयाहि एगं तु अप्पमत्तंमि।
जं इत्थिवेयउदए आहारगमीसगा नत्थि ॥१३॥

शब्दार्थ—**दो**—दो, **रूवाणि**—रूप, **पमत्ते**—प्रमत्तसंयतगुणस्थान में, **चयाहि**—कम करना चाहिये, **एगं**—एक, **तु**—इसी प्रकार (और) **अप्पमत्तंमि**—अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में, **जं**—क्योंकि, **इत्थिवेयउदए**—स्त्रीवेद का उदय होने पर, **आहारगमीसगा**—आहारक और आहारकमिश्र, **नत्थि**—नहीं होते हैं।

गाथार्थ—प्रमत्तसंयतगुणस्थान में दो रूप और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में एक रूप को कम करना चाहिये। क्योंकि स्त्रीवेद का उदय होने पर प्रमत्त में आहारक, आहारकमिश्र तथा अप्रमत्त में आहारक काययोग का उदय नहीं होता है।

विशेषार्थ—प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में नाना जीवापेक्षा बंधहेतुओं के भंगों का विचार प्रारम्भ करते हुए प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में जो विशेषता है, उसका गाथा में निर्देश किया है कि—

'दो रूवाणि पमत्ते ···· ·····' इत्यादि अर्थात् दो रूप कम करना चाहिये। यानि इस गाथा में यद्यपि वेद के साथ योगों का गुणा करने का संकेत नहीं किया है, लेकिन पूर्व गाथा से उसकी अनुवृत्ति लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार समन्वय करना चाहिये कि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में भी वेद के साथ उन-उन गुणस्थानों में प्राप्त योगों का गुणा करके गुणनफल में से प्रमत्तसंयतगुणस्थान में दो रूप और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में एक रूप कम करना चाहिये ।

उक्त दोनों गुणस्थानों में क्रमशः दो रूप और एक रूप कम करने का कारण यह है कि स्त्रियों में चौदह पूर्व के अध्ययन का अभाव है और चौदह पूर्व के ज्ञान बिना किसी को भी आहारकलब्धि होती नहीं है । अतः स्त्रीवेद का उदय रहने पर आहारक काययोग और आहारकमिश्र योग ये दो योग नहीं होते हैं ।

प्रश्न—स्त्रियों में चौदह पूर्व के अध्ययन का अभाव मानने का क्या कारण है ?

उत्तर—शास्त्र में स्त्रियों के दृष्टिवाद के अध्ययन का निषेध किया है । जैसा कि कहा है—

तुच्छा गारवबहुला, चलिंदिया दुब्बला य धीईए ।
इय अइसेसज्झयणा, भूयावाओ उ नो थीणं ।।

अर्थात् स्त्रियां स्वभाव से तुच्छ हैं, अभिमानबहुल हैं, चपल हैं, धैर्य का उनमें अभाव है अथवा मन्दबुद्धि वाली हैं, जिससे इसको ग्रहण व धारण नहीं कर सकती हैं । इसीलिये अतिशयवाले अध्ययनों से युक्त दृष्टिवाद के अध्ययन का स्त्रियों के निषेध किया गया है ।

अतः उक्त स्थितिविशेष के कारण प्रमत्तसंयतगुणस्थान में वेद के साथ अपने योग्य योगों का गुणा करके स्त्रीवेद में आहारकयोग और आहारकमिश्रयोग यह दो भंग और अप्रमत्तसंयत के स्त्रीवेद में आहारककाययोग यह एक भंग कम करना चाहिये ।[1]

---

१ वैक्रिय और आहारक लब्धि वाले प्रमत्तसंयत मुनि लब्धिप्रयोग करने वाले होने से उनको वैक्रियमिश्र और आहारकमिश्र ये दो योग होते हैं । परन्तु वे लब्धि-प्रमत्तसंयत उन-उन शरीरों की विकुर्वणा करके उन-उन

→

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थानों की विशेषता बतलाने के बाद अब उनके बंधहेतुओं और भंगों का विचार करते हैं।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान में पांच से सात बंधहेतु होते हैं। उनमें से जघन्यपदभावी बधहेतु इस प्रकार हैं—

सर्वथा पापव्यापार का त्याग होने से मिथ्यात्व और अविरति इन दोनों के सर्वथा नहीं होने के कारण कषाय और योग यही दो हेतु होते हैं। इसलिये युगलद्विक में से एक युगल, वेदत्रिक में से एक वेद, चार संज्वलन कषाय में से एक क्रोधादिक कषाय और कार्मण तथा औदारिकमिश्र इन दो योगों के बिना शेष तेरह योगों में से एक योग इस प्रकार पांच बंधहेतु होते हैं। इनकी अंकस्थापना का प्रारूप इस प्रकार है—

वेद	योग	युगल	कषाय
३	१३	२	४

इस प्रकार से अंकस्थापना करके क्रमशः गुणा करना चाहिये। गुणाकार इस प्रकार करना चाहिये—पहले तीन वेदों के साथ तेरह योगों का गुणा करने पर उनतालीस (३९) हुए। उनमें से दो रूप कम करने पर शेष (३७) सैंतीस को युगलद्विक से गुणा करने पर (३७×२ =७४) चौहत्तर हुए। इन चौहत्तर को चार कषाय के साथ गुणा करने पर (७४×४=२९६) दो सौ छियानवै भंग होते हैं।

शरीरों के योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण कर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में जाने वाले होने से वहाँ वैक्रियमिश्र और आहारकमिश्र ये दो योग नहीं होते हैं। क्योंकि आरम्भकाल और त्यागकाल में मिश्रपना होता है और उन दोनों समयों में प्रमत्तगुणस्थान ही होता है। इसलिये अप्रमत्तगुणस्थान में एक भंग कम करने का संकेत किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अनेक जीवों की अपेक्षा पांच बंधहेतु के दो सौ छियानवै भंग जानना चाहिए।

अब छह बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त पांच बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर छह हेतु होते हैं। यहाँ भी (२९६) दो सौ छियानवै भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी छह हेतु होते हैं। इनके भी (२९६) दो सौ छियानवै भंग होते हैं।

इस प्रकार छह बंधहेतु के दो प्रकार हैं और उनके कुल भंग (२९६×२९६=५९२) पांच सौ बानवै होते हैं।

अब सात हेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१, पूर्वोक्त पांच बंधहेतुओं में भय और जुगुप्सा दोनों को मिलाने पर सात हेतु होते हैं। उनके भी वही (२९६) दो सौ छियानवै भंग होते हैं।

इस प्रकार प्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (२९६+५९२+२९६=१,१८४) ग्यारह सौ चौरासी भंग होते हैं।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों का दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंगसंख्या
५	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ कषाय	२९६	२९६
६	पूर्वोक्त पांच, भय	२९६	
६	,, ,, जुगुप्सा	२९६	५९२
७	पूर्वोक्त पांच, भय, जुगुप्सा	२९६	२९६
		कुल योग	११८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंधहेतु बतलाने के बाद अब अप्रमत्तसंयत-गुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंग बतलाते हैं।

अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में भी पांच से सात पर्यन्त बंधहेतु होते हैं। उनमें से पांच बंधहेतु इस प्रकार हैं—वेदत्रिक में से एक वेद, कार्मण, औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और आहारकमिश्र के सिवाय ग्यारह योग में से कोई एक योग, युगलद्विक में से एक युगल और संज्वलनकषाय-चतुष्क में से कोई एक कषाय, इस प्रकार कम से कम पांच बंधहेतु होते हैं। यहाँ अंकस्थापना का रूपक इस प्रकार है—

वेद	योग	युगल	कषाय
३	११	२	४

इनमें से पहले वेद के साथ योग का गुणा करने पर तेतीस (३×११=३३) होते हैं। इनमें से स्त्रीवेद के उदय में आहारककाय-योग नहीं होता है। इसलिए एक भंग कम करना चाहिए। जिससे बत्तीस (३२) शेष रहते हैं। ये बत्तीस हास्य-रति के उदयवाले और दूसरे बत्तीस शोक-अरति के उदयवाले होने से युगलद्विक से गुणा करने पर चौंसठ होते हैं। इनमें से कोई एक चौंसठ क्रोधकषायी होते हैं दूसरे चौंसठ मानकषायी, तीसरे चौंसठ मायाकषायी और चौथे चौंसठ लोभकषायी होने से चौंसठ को चार से गुणा करने पर (६४×४=२५६) दो सौ छप्पन हुए।

इस प्रकार पांच बंधहेतु के कुल (२५६) दो सौ छप्पन भंग होते हैं।

अब छह हेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

१. पूर्वोक्त पांच बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर छह हेतु होते हैं। यहाँ भी (२५६) दो सौ छप्पन भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने से भी छह हेतु होते हैं। यहाँ भी (२५६) दो सौ छप्पन भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार छह बंधहेतु के दो प्रकार हैं। उनके कुल भंगों का योग (२५६+२५६=५१२) पांच सौ बारह है।

अब सात बंधहेतुओं का कथन करते हैं—

पूर्वोक्त पांच बंधहेतुओं में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से सात हेतु होते हैं। इनके भी (२५६) दो सौ छप्पन भंग होते हैं।

इस प्रकार अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (२५६+२५६+२५६+२५६=१,०२४) एक हजार चौबीस भंग होते हैं। जिनका दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	प्रत्येक विकल्प के भंग	कुल भंग संख्या
५	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ कषाय	२५६	२५६
६	पूर्वोक्त पांच, भय	२५६	
६	,, ,, जुगुप्सा	२५६	५१२
७	पूर्वोक्त पांच, भय, जुगुप्सा	२५६	२५६
		कुल योग	१०२४

पूर्वोक्त प्रकार से अप्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधहेतुओं का विचार करने के पश्चात् अब क्रमप्राप्त आठवें अपूर्वकरणगुणस्थान के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

अपूर्वकरणगुणस्थान के बंधहेतु

अपूर्वकरणगुणस्थान में वैक्रिय और आहारक यह दो योग भी नहीं होने से अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में बताये गये ग्यारह योगों में से इन दो योगों को कम करने पर नौ योग होते हैं। यहाँ भी पांच, छह और सात बंधहेतु होते हैं। पांच बंधहेतु इस प्रकार हैं—वेदत्रिक में से कोई एक वेद, नौ योग में से कोई एक योग, युगलद्विक में कोई एक युगल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और संज्वलनकषायचतुष्क में से कोई एक कषाय। इस प्रकार जघन्य-पद में पांच बंधहेतु हैं। जिनकी अंकरचना का प्रारूप इस प्रकार जानना चाहिए--

वेद	योग	युगल	कषाय
३	९	२	४

इनमें से वेदत्रिक के साथ नौ योगों का गुणा करने पर (३×९=२७) सत्ताईस भंग हुए। इनको युगलद्विक से गुणा करने पर (२७×२=५४) चउवन भंग होते हैं और इन चउवन को कषाय-चतुष्क से गुणा करने पर (५४×४=२१६) दो सौ सोलह भंग होते हैं।

इस प्रकार आठवें अपूर्वकरणगुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा पांच बंधहेतुओं के (२१६) दो सौ सोलह भंग होते हैं।

अब छह बंधहेतु और उनके भंगों का निर्देश करते हैं—

१. उक्त पांच में भय को मिलाने पर छह हेतु होते हैं। इनके भी ऊपर बताये गये (२१६) दो सौ सोलह भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने से भी छह हेतु होते हैं। इनके भी (२१६) दो सौ सोलह भंग हैं।

इस प्रकार छह बंधहेतु के कुल मिलाकर (२१६+२१६=४३२) चार सौ बत्तीस भंग होते हैं।

अब सात बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं—

पूर्वोक्त पांच बंधहेतुओं में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर सात बंधहेतु होते हैं। इनके भी (२१६) दो सौ सोलह भंग होते हैं।

इस प्रकार अपूर्वकरणगुणस्थान के बंधहेतुओं के सब मिलाकर (२१६+२१६+२१६+२१६=८६४) आठ सौ चौंसठ भंग होते हैं। इन बंधहेतुओं और भंगों का दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु	हेतुओं के विकल्प	विकल्पवार भंग	कुल भंग संख्या
५	१ वेद, १ योग, १ युगल, १ कषाय	२१६	२१६
६	पूर्वोक्त पांच, भय	२१६	
६	,, ,, जुगुप्सा	२१६	४३२
७	पूर्वोक्त पांच, भय, जुगुप्सा	२१६	२१६
		कुल योग	८६४

अब नौवें अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के बधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के बंधहेतु

अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में जघन्यपदवर्ती दो बंधहेतु होते हैं और वे इस प्रकार हैं—संज्वलनकषायचतुष्क में से कोई एक क्रोधादि कषाय और नौ योगों में से कोई एक योग। अतः चार कषाय से नौ योगों का गुणा करने पर दो बंधहेतु के कुल (४×९=३६) छत्तीस भंग हैं तथा उत्कृष्टपद में तीन हेतु होते हैं। उनमें से दो तो पूर्वोक्त और तीसरा वेदत्रिक में से कोई एक वेद। इस गुणस्थान में जब तक पुरुषवेद और संज्वलनकषायचतुष्क इस तरह पांच प्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ तक वेद का भी उदय है। अतः वेदत्रिक में से कोई एक वेद को मिलाने पर तीन बंधहेतु होते हैं। इन तीन हेतुओं का पूर्वोक्त छत्तीस के साथ गुणा करने पर (३६×३=१०८) एक सौ आठ भंग होते हैं तथा कुल मिलाकर (३६+१०८=१४४) एक सौ चवालीस भंग हैं।

अब दसवें सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान से लेकर तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थानों के बंधहेतु एवं उनके भंग बतलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसंपराय आदि गुणस्थानों के बंधहेतु एवं उनके भंग

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में सूक्ष्मकिट्टी रूप की गई संज्वलन लोभ-कषाय और नौ योग कुल दस बंधहेतु हैं। एक जीव के एक समय में लोभ कषाय और एक योग इस प्रकार दो बंधहेतु और अनेक जीवों की अपेक्षा उस एक कषाय का नौ योगों के साथ गुणा करने पर नौ भंग होते हैं।

उपशांतमोह आदि सयोगिकेवली पर्यन्त गुणस्थानों में मात्र योग ही बंधहेतु है। उपशांतमोहगुणस्थान में नौ योग हैं। उन नौ में से कोई भी एक योग एक समय में बंधहेतु होने से उनके नौ भंग होते हैं।

इसी प्रकार से क्षीणमोहगुणस्थान में भी नौ भंग होते हैं।

सयोगिकेवलीगुणस्थान में सात योग होने से सात भंग होते हैं।

इस प्रकार से गुणस्थानों में से प्रत्येक के बंधहेतु और उनके भंगों को जानना चाहिये।

अब ग्रंथकार आचार्य गुणस्थानों के बंधहेतुओं के कुल भंगों की संख्या का योग बतलाते हैं—

सव्वगुणठाणगेसु विसेसहेऊण एत्तिया संखा।
छायाललक्ख बासीइ सहस्स सय सत्त सयरी य ॥१४॥

शब्दार्थ—**सव्व**—समस्त, **गुणठाणगेसु**—गुणस्थानकों में, **विसेसहेऊण**—विशेष हेतुओं की, **एत्तिया**—इतनी, **संखा**—संख्या, **छायाललक्ख**—छियालीस लाख, **बासीइ**—बयासी, **सहस्स**—सहस्र, हजार, **सय**—शत, सौ, **सत्त**—सात, **सयरी**—सत्तर, **य**—और।

गाथार्थ—समस्त गुणस्थानों के विशेष बंधहेतुओं के भंगों की कुल मिलाकर संख्या छियालीस लाख बयासी हजार सात सौ सत्तर है।

विशेषार्थ—पूर्व में अनेक जीवों की अपेक्षा मिथ्यात्व आदि सयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त बंधहेतुओं का निर्देश करते हुए प्रत्येक गुणस्थान में प्राप्त भंगों को बताया है। इस गाथा में उन सब भंगों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोड़कर अंतिम संख्या बताई कि वे छियालीस लाख बयासी हजार सात सौ सत्तर (४६,८२,७७०) होते हैं।[1]

इस प्रकार से गुणस्थानों में युगपत् कालभावी बंधहेतु और उनके भंगों की संख्या बतलाने के पश्चात् अब जीवस्थानों में युगपत् कालभावी बंधहेतुओं की संख्या का प्रतिपादन करते हैं।

जीवस्थानों में बंधहेतु

सोलसट्ठारस हेऊ जहन्न उक्कोसया असन्नीणं।
चोद्दसट्ठारसऽपज्जस्स सन्निणो सन्निगुणगहिओ ॥१५॥

शब्दार्थ—सोलसट्ठारस—सोलह, अठारह, हेऊ—हेतु, जहन्न—जघन्य, उक्कोसया—उत्कृष्ट, असन्नीणं—असंज्ञियों के, चोद्दसट्ठारस—चौदह, अठारह, अपज्जस्स—अपर्याप्त, सन्निणो—संज्ञी के, सन्नि—संज्ञी को, गुणगहिओ—गुणस्थानों के द्वारा ग्रहण किया है।

गाथार्थ—असंज्ञियों के जघन्य और उत्कृष्ट क्रमशः सोलह और अठारह बंधहेतु होते हैं, अपर्याप्त संज्ञी के जघन्य चौदह और उत्कृष्ट अठारह बंधहेतु होते हैं। संज्ञी को गुणस्थानों के द्वारा ग्रहण किया गया है।

विशेषार्थ—गुणस्थानों की तरह जीवस्थानों में भी जघन्य और उत्कृष्ट बंधहेतुओं की संख्या का गाथा में संकेत किया है।

जीवस्थानों के सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्यन्त चौदह भेदों के नाम पूर्व में बतलाये जा चुके हैं। उनमें से आदि के बारह भेद असंज्ञी ही होते हैं। अतः उन बारह भेदों का समावेश गाथा में 'असन्नीणं' शब्द द्वारा किया है। जिसका आशय इस प्रकार है—

---

१ दिगम्बर कर्मसाहित्य में भी बंध-प्रत्ययों की संख्या यहाँ की तरह समान होने पर भी उनके भंगों में अंतर है। उनका वर्णन परिशिष्ट में किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त को छोड़कर शेष बारह जीवस्थानों में जघन्यतः सोलह और उत्कृष्टतः अठारह बंधहेतु होते हैं। लेकिन यह कथन मिथ्यादृष्टिगुणस्थान की अपेक्षा से ही समझना चाहिये। क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में तो बादर अपर्याप्त एकेन्द्रियों के जघन्यपद में पन्द्रह बंधहेतु होते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों के जघन्यपद में चौदह और उत्कृष्टपद में अठारह बंधहेतु होते हैं। इस प्रकार से तेरह जीवस्थानों में तो यथोक्त क्रम से बंधहेतुओं को समझ लेना चाहिये और इनसे शेष रहे एक जीवस्थान संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में तो जैसे पहले गुणस्थानों में बंधहेतुओं का प्रतिपादन किया है तदनुसार समझना चाहिये। क्योंकि पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही चौदह गुणस्थान संभव हैं। जिससे चौदह गुणस्थानों के बंधहेतुओं के भंगों के कथन द्वारा पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही बंधहेतुओं का निर्देश किया गया है, ऐसा समझ लेना चाहिये। अतः यहाँ पुनः उनके भंगों का कथन नहीं करके शेष तेरह जीवस्थानों के भंगों को बतलाते हैं।

अब पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के सिवाय शेष तेरह जीवस्थानों में मिथ्यात्व आदि बंधहेतुओं के संभव अवान्तर भेदों का निर्देश करते हैं।

पर्याप्त संज्ञी व्यतिरिक्त शेष जीवस्थानों में संभव बंधहेतु

मिच्छत्तं एगं चिय छक्कायवहो ति जोग सन्निम्मि।
इंदियसंखा सुगमा असन्निविगलेसु दो जोगा ॥१६॥

शब्दार्थ—मिच्छत्तं—मिथ्यात्व, एगं—एक, चिय—ही, छक्कायवहो—छहों काय का वध, ति—तीन, जोग—योग, सन्निम्मि—(अपर्याप्त) संज्ञी में, इंदियसंखा—इन्द्रियों की संख्या, सुगमा—सुगम, असन्निविगलेसु—असंज्ञी और विकलेन्द्रियों में, दो—दो, जोगा—योग।

गाथार्थ—(पर्याप्त संज्ञी के सिवाय तेरह जीवभेदों में) मिथ्यात्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक और छहों काय का वध होता है। इन्द्रियों की संख्या सुगम है तथा असंज्ञी और विकलेन्द्रियों में योग दो-दो होते हैं।

विशेषार्थ—पूर्व में यह संकेत किया गया है कि गुणस्थानों में बताये गये बंधहेतुओं के भेदों को संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त में भी समझना चाहिये। अतः उसको छोड़कर शेष तेरह जीवस्थानों में मिथ्यात्व आदि बंधहेतुओं के सम्भव अवान्तर भेदों को गाथा में बतलाया है—

'मिच्छत्तं एगं चिय' अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त पर्यन्त तेरह जीवस्थानों में मिथ्यात्व के पांच भेदों में से एक—अनाभोगिक मिथ्यात्व[1] ही होता है, शेष भेद सम्भव नहीं हैं। इसलिए अंकस्थापना में मिथ्यात्व के स्थान में एक (१) अंक रखना चाहिये।

'छक्कायवहो' अर्थात् कायअविरति के छहों भेद होते हैं। परन्तु वे एक-दो कायादि भेद रूप भंगों की प्ररूपणा के विषयभूत नहीं होते हैं। क्योंकि ये सभी जीव छहों काय के प्रति अविरति परिणाम वाले होते हैं, जिससे उनको प्रतिसमय छहों काय की हिंसा होती रहती है।

प्रश्न—पूर्व में मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में जो कायवध के भंगों की प्ररूपणा की है, वह किस तरह सम्भव है? क्योंकि असंज्ञी जीव कायहिंसा से विरत नहीं होने के कारण सामान्यतः छहों काय के हिंसक हैं, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी छह काय की हिंसा से विरत

---

१ आचार्य मलयगिरिसूरि ने एकेन्द्रियादि सभी असंज्ञी जीवों के अनाभोगिक मिथ्यात्व बतलाया है। लेकिन स्वोपज्ञवृत्ति में अनभिग्रहीत मिथ्यात्व का संकेत किया है। इसी अधिकार (बंधहेतु-अधिकार) की पांचवीं गाथा के अन्त में इस प्रकार कहा है—पर्याप्त संज्ञी जीवस्थान में ही यह विशेष सम्भव है, शेष सभी के एक अनभिग्रहीत मिथ्यात्व ही होता है तथा यहाँ भी 'मिथ्यात्वमेकमेवानभिग्रहीतं द्वादशानामसंज्ञिनाम्' इस प्रकार कहा है। विज्ञजन इसका स्पष्टीकरण करने की कृपा करें।

—संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होने से हिंसक ही है। तो फिर उसे सामान्यतः छहों काय का हिंसक क्यों नहीं कहा ? किसी समय एक काय का, किसी समय दो आदि काय का हिंसक क्यों बताया ?

उत्तर—यह दोषापत्ति मिथ्यात्वगुणस्थान के भंगों में सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि संज्ञी जीव मन वाले हैं और मन वाले होने से उनको किसी समय कोई एक काय के प्रति तीव्र, तीव्रतर परिणाम होते हैं। उन संज्ञी जीवों के ऐसा विकल्प होता है कि मुझे अमुक एक काय की हिंसा करना है, अमुक दो काय की हिंसा करना है, अथवा अमुक अमुक तीन काय का घात करना है। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक अमुक-अमुक काय की हिंसा में वे प्रवृत्त होते हैं। इसलिए उस अपेक्षा छह काय के एक, दो आदि संयोग से बनने वाले भंगों की प्ररूपणा वहाँ घटित होती है। परन्तु असंज्ञी जीवों में तो मन के अभाव में उस प्रकार का संकल्प न होने से सभी काय के जीवों के प्रति अविरति रूप सर्वदा एक जैसे परिणाम ही पाये जाते हैं। इस कारण उनके सदैव छहों काय का वधरूप एक भंग ही होता है। जिससे यहाँ काय के स्थान पर एक का अंक रखने का संकेत किया है।

'ति जोग सन्निम्मि' अर्थात् अपर्याप्त संज्ञी में कार्मण, औदारिक-मिश्र और वैक्रियमिश्र ये तीन योग होते हैं, और दूसरे योग नहीं होते हैं। अतः अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतु के भंगों के विचार में योग के स्थान पर तीन का अंक रखना चाहिए किन्तु 'असन्नि विगलेसु दो जोगा' पर्याप्त, अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में दो, दो योग समझना चाहिए। जो इस प्रकार कि अपर्याप्त अवस्था में कार्मण और औदारिकमिश्र ये दो योग और पर्याप्त दशा में औदारिक काययोग तथा असत्यामृषावचनयोग ये दो योग होते हैं। अतः उनके बंधहेतु के विचार में योग के स्थान पर दो का अंक रखना चाहिए।

'इंदियसंखा सुगमा' अर्थात् तेरह जीवस्थानों में इन्द्रियों की संख्या प्रसिद्ध होने से सुगम है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पंचेन्द्रिय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच, चतुरिन्द्रिय के चार, त्रीन्द्रिय के तीन, द्वीन्द्रिय के दो और एकेन्द्रिय जीवों के एक होने से उन उन जीवों के बंधहेतु के विचार-प्रसंग में इन्द्रिय की अविरति के स्थान में जो जीव जितनी इन्द्रिय वाला हो उतनी संख्या रखना चाहिये।

संज्ञी अपर्याप्त के सिवाय शेष बारह जीवभेदों में अनन्तानुबंधी आदि चारों कषायें होने से कषाय के स्थान पर चार की संख्या तथा वेद सिर्फ एक नपुंसक ही होने से वेद के स्थान पर एक का अंक किन्तु असंज्ञी पंचेन्द्रिय के द्रव्य से तीनों वेद होने से असंज्ञी पंचेन्द्रिय के भंगों के विचार में वेद के स्थान में तीन का अंक[1] और इन सभी तेरह जीवस्थानों में दोनों युगल होने से युगल के स्थान पर दो का अंक रखना चाहिए।

संज्ञी अपर्याप्त में यदि लब्धि से उनकी विवक्षा की जाये तो एकेन्द्रिय आदि को कषायादि जिस प्रकार से बताई गई हैं, उसी प्रकार समझना चाहिए और करण-अपर्याप्त संज्ञी में पर्याप्त संज्ञी की तरह अनन्तानुबंधी का उदय नहीं भी होता है, अतः जब न हो तब कषाय के स्थान पर अप्रत्याख्यानावरण आदि तीनों और उदय हो तब चारों कषाय रखना चाहिए। तीनों वेदों का उदय उनको होने से वेद के स्थान पर तीन एवं युगल के स्थान पर दो का अंक रखना चाहिए।

---

१ स्वोपज्ञवृत्ति में तो प्रत्येक जीवभेदों के तीन वेद का उदय मानकर भंग बतलाये हैं, जिससे वेद के स्थान पर तीन का अंक रखा है। परन्तु अन्य ग्रन्थों में चतुरिन्द्रिय तक के जीवों के मात्र नपुंसकवेद का उदय कहा है। अतएव जब चतुरिन्द्रिय तक के भंगों का विचार करना हो तब वेद के स्थान पर एक का अंक रखना चाहिये। परमार्थतः तो असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी नपुंसकवेद वाले ही होते हैं परन्तु बाह्य आकार की दृष्टि से वे तीनों वेद वाले होते हैं। जिससे यहाँ असंज्ञी के भंगों के विचार में वेद के स्थान पर तीन का अंक रखना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से जीवस्थानों में बंधहेतुओं सम्बन्धी विशेषताओं की सामान्य रूपरेखा जानना चाहिए। अब इसी प्रसंग में एकेन्द्रिय जीवों में सम्भव योगों और संज्ञी अपर्याप्त आदि में प्राप्त गुणस्थानों को बतलाते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में संभव योग

एवं च अपज्जाणं बायरसुहुमाण पज्जयाण पुणो।
तिण्णेक्ककायजोगा सण्णिअपज्जे गुणा तिन्नि ॥१७॥

शब्दार्थ—**एवं**—इसी तरह, **च**—और, **अपज्जाणं**—अपर्याप्त, **बायर-सुहुमाण**—बादर और सूक्ष्म के, **पज्जयाण**—पर्याप्त के, **पुणो**—पुनः, **तिण्णेक्क**—तीन और एक, **काययोगा**—काययोग, **सण्णिअपज्जे**—संज्ञी अपर्याप्त के, **गुणा**—गुणस्थान, **तिन्न**—तीन।

गाथार्थ—इसी तरह अर्थात् असंज्ञी की तरह बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त के दो योग होते हैं। पर्याप्त बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय के क्रमशः तीन और एक योग होता है तथा अपर्याप्त संज्ञी के तीन गुणस्थान होते हैं।

विशेषार्थ– गाथा में बादर, सूक्ष्म एकेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था में प्राप्त योगों एवं अपर्याप्त संज्ञी में पाये जाने वाले गुणस्थानों का निर्देश किया है। जिसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पूर्व गाथा में जैसे अपर्याप्त असंज्ञी और विकलेन्द्रियों में दो योग बतलाये हैं, उसी प्रकार अपर्याप्त बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय में भी कार्मण और औदारिकमिश्र ये दो योग समझाना चाहिये— 'एवं च अपज्जाणं बायरसुहुमाण'। किन्तु पर्याप्त बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अनुक्रम से तीन और एक योग होता है। उनमें से पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के औदारिक, वैक्रिय और वैक्रियमिश्र ये तीन योग होते हैं और पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के औदारिक काययोग रूप एक योग ही होता है। इसलिये उन-उन जीवों की अपेक्षा से बंधहेतुओं के भंगों का विचार करने के प्रसंग में योगस्थान में तीन और एक का अंक रखना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि गुणस्थानों का विचार किया जाये तो करण-अपर्याप्त संज्ञी के मिथ्यादृष्टि, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि ये तीन गुणस्थान होते हैं तथा करण-अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं। जिसका संकेत गाथा के प्रारम्भ में 'एवं च' पद में 'एवं' के अनन्तर आगत 'च' शब्द से किया गया समझना चाहिये तथा पर्याप्त अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय और पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टि रूप एक गुणस्थान होता है। लेकिन जब एकेन्द्रियादि पूर्वोक्त जीवों में सासादन गुणस्थान होता है तब वहाँ मिथ्यात्व नहीं होने से बंधहेतु पन्द्रह होते हैं। उस समय कार्मण और औदारिकमिश्र ये दो योग होते हैं। क्योंकि संज्ञी के सिवाय अन्य जीवों को सासादनत्व अपर्याप्त अवस्था में ही होता है, अन्य काल में नहीं होता है और अपर्याप्त संज्ञी के सिवाय शेष जीवों के अपर्याप्त अवस्था में पूर्वोक्त दो योग ही होते हैं और यह पहले कहा जा चुका है कि अपर्याप्त संज्ञी में तो कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र ये तीन योग होते हैं।

प्रश्न—सासादनभाव में भी शेष पर्याप्तियों से अपर्याप्त और शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त के औदारिककाययोग संभव है। इसलिये बादर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सासादन-गुणस्थान में तीन योग न कह कर दो योग ही क्यों बताये हैं?

उत्तर—दो योग बताने का कारण यह है कि शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त अवस्था में सासादनगुणस्थान होता ही नहीं है। क्योंकि सासादनभाव का काल मात्र छह आवलिका है और शरीरपर्याप्ति से पर्याप्तत्व तो अन्तमुहूर्त काल में होता है। जिससे शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही सासादनभाव चला जाता है। इसीलिये उन जीवों को सासादनभाव में पूर्वोक्त दो योग ही पाये जाते हैं और मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब तक कार्मण और औदारिकमिश्र यही दो योग होते हैं और शरीर-पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद औदारिककाययोग होता है। जिससे अपर्याप्त अवस्था में तीन योग माने जाते हैं।

अब इसी बात को स्वयं ग्रन्थकार आचार्य स्पष्ट करते हुए जीवस्थानों में बंधहेतु और उनके भंगों का कथन करते हैं—

उरलेण तिन्नि छण्हं सरीरपज्जत्तयाण मिच्छाणं।
सविउव्वेण सन्निस्स सम्ममिच्छस्स वा पंच ॥१८॥

शब्दार्थ—**उरलेण**—औदारिक के साथ, **तिन्नि**—तीन, **छण्हं**—छह जीवस्थानों में, **सरीरपज्जत्तयाण**—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त, **मिच्छाणं**—मिथ्यादृष्टि, **सविउव्वेण**—वैक्रियकाययोग सहित, **सन्निस्स**—संज्ञी के, **सम्म**—सम्यग्दृष्टि, **मिच्छस्स**—मिथ्यादृष्टि के, **वा**—अथवा, **पंच**—पांच।

गाथार्थ—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त मिथ्यादृष्टि छह जीवस्थानों में औदारिककाययोग के साथ तीन योग और सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त संज्ञी जीवों के वैक्रियकाययोग सहित पांच योग होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त और शेष पर्याप्तियों से अपर्याप्त एकेन्द्रिय आदि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवभेदों में बंधहेतु और उनके भंगों का विचार किया गया है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त एवं शेष पर्याप्तियों से अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि सूक्ष्म-बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन छह जीवस्थानों में औदारिककाययोग के साथ तीन योग होते हैं—'उरलेण तिन्नि छण्हं'। अतः इन अपर्याप्त छह जीवस्थानों में मिथ्यादृष्टिगुणस्थान की अपेक्षा बंधहेतुओं के भंगों का विचार करने पर अंकस्थापना में योग के स्थान पर तीन रखना चाहिये तथा संज्ञी अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीवों के शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले पूर्वोक्त वैक्रियमिश्र, औदारिक और कार्मण ये तीन योग होते हैं और शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव और नारकों की अपेक्षा वैक्रियकाययोग एवं मनुष्य और तिर्यंचों की अपेक्षा औदारिककाययोग संभव होने से कुल पांच योग होते हैं। अतएव संज्ञी के अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टित्व की अपेक्षा या मिथ्यादृष्टित्व की अपेक्षा बंधहेतुओं के भंगों के कथन करने के प्रसंग में योग के स्थान पर पांच का अंक रखना चाहिये।

इस भूमिका को बतलाने के पश्चात् अब पहले जो गाथा १५ में संज्ञी अपर्याप्त के (चोद्दसट्ठारसऽपज्जस्स सन्निणो) जघन्यपद में चौदह और उत्कृष्टपद में अठारह बंधहेतु कहे हैं, उनका विचार करते हैं।

संज्ञी अपर्याप्त के बंधहेतु के भंग

जघन्यपद में चौदह बंधहेतु सम्यग्दृष्टि के होते हैं, जो इस प्रकार जानना चाहिये—

छह काय का वध, पांच इन्द्रियों की अविरति में से कोई एक इन्द्रिय की अविरति, युगलद्विक में से कोई एक युगल, वेदत्रिक में से कोई एक वेद, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन क्रोधादि कषायों में से कोई भी क्रोधादि तीन कषाय तथा योग यहाँ पांच संभव हैं। जैसाकि ग्रंथकार आचार्य ने ऊपर गाथा में संकेत किया है—

सविउव्वेण सन्निस्स सम्ममिच्छस्स वा पंच।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि संज्ञी अपर्याप्त के वैक्रिय और औदारिक काययोग के साथ पांच योग होते हैं। अतः पांच योगों में से कोई एक योग। इस प्रकार जघन्यपद में चौदह बंधहेतु होते हैं।

अंकस्थापना में पर्याप्त संज्ञी के सिवाय सभी जीवों के सदैव छह काय का वधरूप एक ही भंग होता है। इसलिए अंकस्थापना इस प्रकार करना चाहिये—

काय	वेद	योग	इन्द्रिय-अविरत	युगल	कषाय
१	३	५	५	२	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से अंकस्थापना करने के पश्चात् सर्वप्रथम तीन वेद के साथ पांच योगों का गुणा करने पर (३×५=१५) पन्द्रह हुए। इनमें से अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में चार रूप कम करने का संकेत पूर्व में (गाथा १२ में) किया गया है। अतः शेष ग्यारह रहे। इन ग्यारह को पांच इन्द्रियों की अविरत से गुणा करने पर (११×५=५५) पचपन हुए। इनको युगलद्विक से गुणा करने पर (५५×२=११०) एक सौ दस हुए और इन एक सौ दस को क्रोधादि चार कषायों के साथ गुणा करने पर (११०×४=४४०) चार सौ चालीस होते हैं।

ये संज्ञी अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि के चौदह बंधहेतुओं के भंग हैं।

१. इन चौदह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर पन्द्रह हेतु होते हैं। उनके भी चार सौ चालीस (४४०) ही भंग हुए।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी होने वाले पन्द्रह हेतुओं के भी चार सौ चालीस (४४०) भंग होते हैं।

पूर्वोक्त जघन्यपदभावी चौदह बंधहेतुओं में भय और जुगुप्सा इन दोनों को युगपत् मिलाने से सोलह हेतु होते हैं। उनके भी चार सौ चालीस (४४०) भंग होते हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर अविरतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त संज्ञी के (४४०+४४०+४४०+४४०=१७६०) सत्रह सौ साठ भंग होते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त संज्ञी के कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र ये तीन योग होते हैं। अतः योग के स्थान पर तीन का अंक रखना चाहिये। इस गुणस्थान वाले के अनन्तानुबंधी का उदय होने से जघन्यपद में पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। उनकी अंकस्थापना इस प्रकार करना चाहिये—

कायवध	वेद	योग	इन्द्रिय-अविरत	युगल	कषाय
१	३	३	५	२	४

इनमें से पहले तीन वेद के साथ तीन योग का गुणा करने पर नौ (३×३=९) होते हैं। इनमें से पूर्व में बताये गये अनुसार सासादन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान में एक रूप कम करने पर[1] आठ (८) शेष रहे। इन आठ का पांच इन्द्रिय-अविरत से गुणा करने पर (८×५=४०) चालीस हुए। इनका युगलद्विक से गुणा करने पर (४०×२=८०) अस्सी हुए। जिनका चार कषाय से गुणा करने पर (८०×४=३२०) तीन सौ बीस हुए। जिससे सासादनगुणस्थान में संज्ञी अपर्याप्त के पन्द्रह बंधहेतुओं के तीन सौ बीस (३२०) भंग जानना चाहिये।

१. पूर्वोक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर होने वाले सोलह बंधहेतुओं के भी तीन सौ बीस (३२०) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा के मिलाने पर भी सोलह बंधहेतुओं के तीन सौ बीस (३२०) भंग समझ लेना चाहिये।

भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी तीन सौ बीस (३२०) भंग होते हैं।

इस प्रकार सासादनगुणस्थान में संज्ञी अपर्याप्त के कुल मिलाकर (३२०+३२०+३२०+३२०=१२८०) बारह सौ अस्सी भंग जानना चाहिये।

मिथ्यादृष्टि संज्ञी अपर्याप्त के पूर्वोक्त पन्द्रह हेतुओं में मिथ्यात्व के उदय का समावेश होने से जघन्यपद में सोलह बंधहेतु होते हैं। यहाँ योग पांच होते हैं। क्योंकि पूर्व में बताया जा चुका है कि सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि संज्ञी अपर्याप्त के वैक्रिय सहित पांच योग होते हैं। अतएव अंकस्थापना पूर्ववत् करके मिथ्यात्व का उदय होने से और वह भी अनाभोगिकमिथ्यात्व का होने से मिथ्यात्व के स्थान पर एक के अंक की स्थापना करना चाहिये। जिससे अंकस्थापना इस प्रकार होगी—

---

१ नपुंसकवेदी के वैक्रियमिश्र काययोग नहीं होने से एक रूप कम करने का निर्देश किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व	कायवध	वेद	योग	इन्द्रिय	अविरत	युगल	कषाय
१	१	३	५	५	२	४	

इस अंकस्थापना में तीन वेदों के साथ पांच योगों का गुणा करने से (३×५=१५) पन्द्रह हुए। उनका पांच इन्द्रियों की अविरति से गुणा करने पर (१५×५=७५) पचहत्तर हुए। जिनको युगलद्विक से गुणा करने पर (७५×२=१५०) एक सौ पचास हुए और इनको भी चार कषाय से गुणा करने पर (१५०×४=६००) छह सौ होते हैं। जो संज्ञी अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि के सोलह बंधहेतु के भंगों की संख्या है।

१. उक्त बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी उतने ही अर्थात् छह सौ (६००) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् छह सौ (६००) भंग जाना चाहिये।

भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर अठारह बंधहेतु होते हैं। इनके भी छह सौ (६००) भंग जानना चाहिये।

इस प्रकार कुल मिलाकर संज्ञी अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि के (६००+६००+६००+६००=२४००) चौबीस सौ भंग होते हैं और तीनों गुणस्थानों के सभी मिलकर (१७६०+१२८०+२४००=५४४०) चउवन सौ चालीस भंग जानना चाहिये।

अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

संज्ञी अपर्याप्त के बंधहेतुओं के भंगों को बतलाने के पश्चात् अब अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं—

असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त के सासादनगुणस्थान में जघन्य से पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। जो इस प्रकार हैं—छह काय का वध, पांच इन्द्रिय की अविरत में से किसी एक इन्द्रिय की अविरत, युगलद्विक में से कोई एक युगल, वेदत्रिक में से कोई एक वेद, अनन्तानुबंधी आदि कषायों में से कोई एक क्रोधादि चार और कार्मण तथा औदारिकमिश्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काययोग में से कोई एक योग। इस प्रकार कम से कम पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। जिनकी अंकस्थापना इस प्रकार जानना चाहिये—

कायवध	इन्द्रिय-अविरति	कषाय	युगल	वेद	योग
१	५	४	२	३	२'

इन अंकों का अनुक्रम से गुणा करने पर पन्द्रह बंधहेतुओं के दो सौ चालीस (२४०) भंग होते हैं।

१. उक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सोलह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् दो सौ चालीस (२४०) भंग हैं।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सोलह बंधहेतुओं के दो सौ चालीस (२४०) भंग होते हैं।

उक्त पन्द्रह हेतुओं में भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी दो सौ चालीस (२४०) भंग जानना चाहिये तथा सब मिलाकर सासादनगुणस्थान में वर्तमान असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त के (२४०+२४०+२४०+२४०=९६०) नौ सौ साठ भंग होते हैं।

मिथ्यादृष्टि असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त के मिथ्यात्व का उदय होने से जघन्यपद में सोलह बंधहेतु होते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में अपर्याप्त अवस्था में योग तीन होते हैं। अतः योग के स्थान पर तीन का अंक रखकर पूर्ववत् अनुक्रम से अंकों का गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के तीन सौ साठ (३६०) भंग होते हैं।

१. उक्त सोलह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी तीन सौ साठ (३६०) भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके तीन सौ साठ (३६०) भंग जानना चाहिये।

उक्त सोलह बंधहेतुओं में भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से अठारह बंधहेतु होते हैं। इनके भी तीन सौ साठ (३६०) भंग जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कुल मिलाकर मिथ्यादृष्टि असंज्ञी अपर्याप्त के (३६०+३६०+३६०+३६०=१४४०) चौदह सौ चालीस भंग होते हैं और दोनों गुणस्थानों के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर भंग (९६०+१४४०=२४००) चौबीस सौ होते हैं।

पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के जघन्यपद में सोलह बंधहेतु होते हैं। जो इस प्रकार हैं—एक मिथ्यात्व, छह काय का वध, पांच इन्द्रियों की अविरति में से किसी एक इन्द्रिय की अविरति, युगलद्विक में से कोई एक युगल, अनन्तानुबंधी आदि कषायों में से कोई भी क्रोधादि चार कषाय, वेदत्रिक में से एक वेद और औदारिक काययोग तथा असत्यामृषा वचनयोग रूप दो योग। जिनकी अंकस्थापना इस प्रकार जानना चाहिये—

मिथ्यात्व	षट्कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	कषाय	वेद	योग
१	१	५	२	४	३	२

इन अंकों का क्रमशः गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के दो सौ चालीस (२४०) भंग होते हैं।

१. इन सोलह बंधहेतुओं में भय का प्रक्षेप करने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी दो सौ चालीस (२४०) भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर भी सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी दो सौ चालीस (२४०) भंग जानना चाहिये।

उक्त सोलह हेतुओं में भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से अठारह बंधहेतु होते हैं। इनके भी दो सौ चालीस (२४०) भंग होते हैं और सब मिलकर पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतु के (२४०+२४०+२४०+२४०=९६०) नौ सौ साठ भंग होते हैं।

इस प्रकार पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंग जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंग

अब चतुरिन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं।

अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से चतुरिन्द्रिय जीवों के दो प्रकार हैं। उनमें से पहले अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों के बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं कि इनको सासादनगुणस्थान में जघन्यतः पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। जो इस प्रकार हैं— छह काय का वध, चार इन्द्रियों की अविरति में से एक इन्द्रिय की अविरति, युगलद्विक में से एक युगल तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के सिवाय शेष सभी संसारी जीव परमार्थतः नपुंसकवेदी हैं मात्र असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में स्त्री और पुरुष का आकार होने से उस आकार की अपेक्षा वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी भी माने जाते हैं। जिससे असंज्ञियों में तीन वेद बतलाये हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों में एक नपुंसकवेद ही समझना चाहिये। अतः वेद एक तथा अनन्तानुबंधी क्रोधादि में से कोई भी क्रोधादि चार कषाय, कार्मण और औदारिकमिश्र काययोग में से एक योग।

इनकी अंकस्थापना में कायस्थान पर एक रखना चाहिये। क्योंकि षट्काय की हिंसा का षट्संयोगी भंग एक ही होता। इन्द्रिय-अविरित के स्थान पर चार, युगल के स्थान पर दो, वेद के स्थान पर एक, कषाय के स्थान पर चार और योग के स्थान पर दो का अंक रखना चाहिये। अंकस्थापना का रूप इस प्रकार का होगा—

कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	४	२	१	४	२

इन अंकों का गुणकार इस प्रकार करना चाहिये—चारों इन्द्रिय की अविरति एक एक युगल के उदय वाले के होती है। इसलिये इन्द्रिय-अविरति को युगलद्विक से गुणा करने पर (४+२=८) आठ होते हैं। ये आठों क्रोधादि कोई भी एक एक कषाय के उदय वाले हैं। अतः आठ को चार से गुणा करने पर (८×४=३२) बत्तीस हुए। ये बत्तीस भी एक एक योग वाले हैं। इसलिये उनका दो से गुणा करने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३२×२=६४) चौंसठ होते हैं। इतने अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय के सासादनगुणस्थान में पन्द्रह बंधहेतु के भंग होते हैं।

१. इन पन्द्रह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सोलह बंधहेतु होते हैं। इनको भी चौंसठ (६४) भंग हैं।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर भी सोलह बंधहेतु होंगे। इनके भी चौंसठ (६४) भंग जानना चाहिये।

पूर्वोक्त पन्द्रह हेतुओं में युगपत् भय-जुगुप्सा को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी चौंसठ (६४) भंग होते हैं और कुल मिलाकर सासादनगुणस्थान में अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय के बंधहेतुओं के (६४+६४+६४+६४=२५६) दो सौ छप्पन भंग जानना चाहिये।

मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय के जघन्यपद में पूर्वोक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में मिथ्यात्वमोहनीय का प्रक्षेप करने से सोलह बंधहेतु होते हैं। यहाँ कार्मण और औदारिकमिश्र और औदारिक यह तीन योग होते हैं। क्योंकि शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद औदारिक काययोग घटित होता है। जिससे योग के स्थान पर तीन का अंक रखना चाहिये। अंकस्थापना का क्रम इस प्रकार है—

मिथ्यात्व	कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	१	४	२	१	४	३

इन अंकों का परस्पर क्रमशः गुणा करने पर छियानवै (९६) भंग होते हैं।

१. इन सोलह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी छियानवै (९६) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी छियानवै (९६) भंग होते हैं।

पूर्वोक्त सोलह बंधहेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी छियानवै (९६) भंग होते हैं और सब मिलाने पर अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के (९६+९६+९६+

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६=३८४) तीन सौ चौरासी भंग होते हैं और दोनों गुणस्थानों के कुल मिलाकर (२५६+३८४=६४०) छह सौ चालीस भंग होते हैं।

पर्याप्त चतुरिन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

पर्याप्त चतुरिन्द्रिय के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। इसके जघन्यपद में सोलह बंधहेतु होते हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये—मिथ्यात्व एक, छह काय का वध एक, चार इन्द्रियों की अविरति में से अन्यतर एक इन्द्रिय की अविरति, युगलद्विक में से एक युगल, अनन्तानुबंधि क्रोधादि में से अन्यतर क्रोधादि चार कषाय, नपुंसकवेद और औदारिक काययोग तथा असत्यामृषा वचनयोग ये दो योग। जिनकी अंकस्थापना इस प्रकार होगी—

मिथ्यात्व	कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	कषाय	वेद	योग
१	१	४	२	४	१	२

इन अकों का क्रमशः गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के चौंसठ भंग होते हैं।

१. इन सोलह बंधहेतुओं में भय का प्रक्षेप करने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी पूर्व की तरह चौंसठ (६४) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी चौंसठ भंग होंगे।

पूर्वोक्त सोलह बंधहेतुओं में युगपत् भय-जुगुप्सा को मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी चौंसठ (६४) भंग जानना चाहिये।

इस प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (६४+६४+६४+६४=२५६) दो सौ छप्पन भंग होते हैं।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त और पर्याप्त दोनों के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (२५६+३८४+२५६=८९६) आठ सौ छियानवें भंग जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

अब त्रीन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंगों का कथन करते हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से त्रीन्द्रिय भी दो प्रकार के हैं। उनमें से पहले अपर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंगों को बतलाते हैं।

अपर्याप्त त्रीन्द्रिय के भी चतुरिन्द्रिय की तरह सासादनगुणस्थान में जघन्यपदभावी पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। यहाँ इतनी विशेषता है कि इन्द्रिय-अविरति के स्थान पर तीन इन्द्रियों की अविरति में से एक इन्द्रिय की अविरति ग्रहण करके अंकस्थापना इस प्रकार करना चाहिये—

कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	३	२	१	४	२

इन अंकों का क्रमशः परस्पर गुणा करने पर पन्द्रह बंधहेतुओं के अड़तालीस (४८) भंग होते हैं।

१. इन पन्द्रह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सोलह हेतु होते हैं। इनके भी अड़तालीस (४८) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सोलह हेतु होते हैं। इनके अड़तालीस (४८) भंग होंगे।

पूर्वोक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी अड़तालीस (४८) भंग जानना चाहिये।

इस प्रकार सासादनगुणस्थान में अपर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (४८+४८+४८+४८=१९२) एक सौ बानवे भंग होते हैं।

मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त त्रीन्द्रिय के पूर्वोक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में मिथ्यात्वरूप हेतु के मिलाने से सोलह बंधहेतु होते हैं। यहाँ योग कार्मण, औदारिकमिश्र और औदारिक ये तीन होने से योग के स्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर तीन के अंक की स्थापना करना चाहिये। अंकस्थापना का रूप इस प्रकार है—

मिथ्यात्व	कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	१	३	२	१	४	३

इन अंकों का क्रमशः गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के बहत्तर (७२) भंग होते हैं।

१. इन सोलह हेतुओं में भय को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होंगे। जिनके पूर्ववत् बहत्तर (७२) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर होने वाले सत्रह बंधहेतुओं के पूर्ववत् बहत्तर (७२) भंग जानना चाहिये।

उक्त सोलह हेतुओं में युगपत् भय-जुगुप्सा को मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् बहत्तर भंग होते हैं और कुल मिलाकर अपर्याप्त त्रीन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के (७२+७२+७२+७२=२८८) दो सौ अठासी भंग होते हैं तथा दोनों गुणस्थान के बंधहेतु के कुल भंग (१९२+२८८=४८०) चार सौ अस्सी हैं।

पर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

पर्याप्त त्रीन्द्रिय के पर्याप्त चतुरिन्द्रिय की तरह जघन्यपद में सोलह बंधहेतु होते हैं। मात्र तीन इन्द्रिय की अविरति में से अन्यतर एक इन्द्रिय की अविरति समझना चाहिये। शेष सभी कथन पर्याप्त चतुरिन्द्रियवत् जानना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि यहाँ अंकस्थापना का रूप यह होगा—

मिथ्यात्व	कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	कषाय	वेद	योग
१	१	३	२	४	१	२

इन अंकों का परस्पर गुणा करने पर अड़तालीस (४८) भंग होते हैं।

१. इन सोलह में भय को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी अड़तालीस (४८) भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होंगे। उनके भी अड़तालीस (४८) भंग जानना चाहिये।

पूर्वोक्त सोलह बंधहेतुओं में युगपत् भय-जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर अठारह हेतु होते हैं। उनके भी अड़तालीस भंग जानना चाहिये और कुल मिलाकर मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में पर्याप्त त्रीन्द्रिय के बंध-हेतुओं के (४८+४८+४८+४८=१९२) एक सौ बानवै भंग जानना चाहिये तथा त्रीन्द्रिय के बंधहेतुओं के कुल भंग (४८०+१९२=६७२) छह सौ बहत्तर होते हैं।

इस प्रकार से त्रीन्द्रिय के बंधहेतु और उनके भंगों को जानना चाहिये। अब द्वीन्द्रिय के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

द्वीन्द्रिय जीव भी दो प्रकार के होते हैं—अपर्याप्त और पर्याप्त। इनमें से पहले अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों के सासादनगुणस्थान में चतुरिन्द्रिय की तरह पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। लेकिन यहाँ मात्र दो इन्द्रिय की अविरति में से अन्यतर एक इन्द्रिय की अविरति कहना चाहिये। अतः अंक-स्थापना का रूप इस प्रकार होगा—

कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	२	२	१	४	२

इन अंकों का क्रमशः गुणा करने पर पन्द्रह बंधहेतुओं के बत्तीस (३२) भंग होते हैं।

१. इन पन्द्रह बंधहेतुओं में भय को मिलाने पर सोलह हेतु होते हैं। इनके भी बत्तीस (३२) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर सोलह हेतुओं के भी बत्तीस (३२) भंग होंगे।

पूर्वोक्त पन्द्रह हेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी बत्तीस (३२) भंग होंगे और सब मिलाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के सासादनगुणस्थान में (३२+३२+३२+३२=१२८) एक सौ अट्ठाईस भंग होते हैं।

मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के पूर्वोक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में मिथ्यात्व के मिलाने पर सोलह होते हैं। यहाँ योग कार्मण, औदारिक-मिश्र और औदारिक ये तीन होते हैं। अतः योग के स्थान पर तीन का अंक रखकर इस प्रकार अंकस्थापना करना चाहिये—

मिथ्यात्व	कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	१	२	२	१	४	३

इन अंकों का पूर्ववत् अनुक्रम से गुणा करने पर मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के सोलह बंधहेतु के अड़तालीस (४८) भंग होते हैं।

१. इन सोलह बंधहेतुओं में भय का प्रक्षेप करने पर सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी अड़तालीस (४८) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा के मिलाने पर भी सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी पूर्ववत् अड़तालीस (४८) भंग होते हैं।

उक्त सोलह हेतुओं में युगपत् भय-जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी अड़तालीस (४८) भंग जानना चाहिये और सब मिलाकर (४८+४८+४८+४८=१९२) एक सौ बानवै भंग होते हैं।

दोनों गुणस्थानों में द्वीन्द्रिय अपर्याप्त के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (१२८+१९२=३२०) तीन सौ बीस भंग होते हैं।

पर्याप्त द्वीन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

पर्याप्त द्वीन्द्रिय के अनन्तरोक्त (मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के लिए कहे गये) सोलह बंधहेतु होते हैं। यहाँ औदारिक काययोग और असत्यामृषा वचनयोग इन दो योगों के होने से योग के स्थान पर दो का अंक रखकर इस प्रकार अंकस्थापना करना चाहिये—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व	कायवध	इन्द्रिय-अविरति	युगल	वेद	कषाय	योग
१	१	२	२	१	४	२

इन अंकों का क्रमानुसार गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के बत्तीस (३२) भंग होते हैं।

१. इन सोलह में भय को मिलाने पर सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी बत्तीस (३२) भंग होते हैं।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर सत्रह हेतुओं के भी बत्तीस (३२) भंग जानना चाहिये।

पूर्वोक्त सोलह हेतुओं में युगपत् भय-जुगुप्सा के मिलाने पर अठारह बंधहेतु होते हैं। इनके भी बत्तीस (३२) भंग जानना चाहिये और कुल मिलाकर पर्याप्त द्वीन्द्रिय के बंधहेतुओं के (३२+३२+३२+३२= १२८) एक सौ अट्ठाईस भंग होते हैं तथा अपर्याप्त और पर्याप्त द्वीन्द्रिय के सब मिलाकर (३२०+१२८=४४८) चार सौ अड़तालीस भंग जानना चाहिये।

इस प्रकार से द्वीन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंगों का कथन करने के पश्चात् अब एकेन्द्रिय के बंधहेतु और उनके भंगों को बतलाते हैं।

अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के बंधहेतुओं के भंग

बादर और सूक्ष्म के भेद से एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं और इनके भी अपर्याप्त एवं पर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद होने से एकेन्द्रिय जीवों के कुल चार भेद हो जाते हैं। इनमें से पहले बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त के बंधहेतु और उनके भंगों का निरूपण करते हैं।

अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के सासादनगुणस्थान में जघन्यतः पूर्व की तरह पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। यहाँ मात्र एक स्पर्शनेन्द्रिय की अविरति ही होती है। अतः अंकस्थापना में इन्द्रिय-अविरति के स्थान में एक, छह कायवध के स्थान में एक, कषाय के स्थान में चार, युगल के स्थान में दो, वेद के स्थान में एक और योग के स्थान में दो रखना चाहिये। जिससे अंकस्थापना का रूप इस प्रकार होगा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय-अविरति	कायवध	कषाय	युगल	वेद	योग
१	१	४	२	१	२

इन अंकों का अनुक्रम से परस्पर गुणा करने पर पन्द्रह बंधहेतु के सोलह (१६) भंग होते हैं।

१. इन पन्द्रह हेतुओं में भय का प्रक्षेप करने पर सोलह बंधहेतु होते हैं। इनके भी सोलह (१६) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा के मिलाने पर भी सोलह (१६) हेतु होंगे। इनके भी सोलह (१६) भंग होंगे।

पूर्वोक्त पन्द्रह हेतुओं में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी सोलह (१६) भंग जानना चाहिये और इस प्रकार सासादनगुणस्थान में अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के कुल मिलाकर (१६+१६+१६+१६=६४) चौंसठ भंग होते हैं।

अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के उक्त पन्द्रह बंधहेतुओं में मिथ्यात्व रूप हेतु के मिलाने पर सोलह बंधहेतु होते हैं और यहाँ कार्मण, औदारिकमिश्र एवं औदारिक इन तीन योगों में से अन्यतर योग कहकर योग के स्थान पर तीन का अंक रखना चाहिये। जिससे अंकस्थापना का रूप इस प्रकार होगा—

मिथ्यात्व	इन्द्रिय-अविरति	कायवध	कषाय	युगल	वेद	योग
१	१	१	४	२	१	३

इन अंकों का परस्पर गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के चौबीस (२४) भंग होते हैं।

१० इन सोलह बंधहेतुओं में भय का प्रक्षेप करने पर सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग होते हैं।

२० अथवा जुगुप्सा के मिलाने पर सत्रह हेतु के भी चौबीस (२४) भंग जानना चाहिये।

पूर्वोक्त सोलह हेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग जानना चाहिये और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब मिलाकर (२४+२४+२४+२४=९६) छियानवै भंग होते हैं। और दोनों गुणस्थानों में अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के कुल मिलाकर (६४+९६=१६०) एक सौ साठ भंग जानना चाहिये।

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के जघन्यपद में अनन्तरोक्त (ऊपर अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के मिथ्यात्वगुणस्थान में कहे गये) सोलह बंधहेतु हैं। यहाँ मात्र औदारिक, वैक्रिय और वैक्रियमिश्र इन तीन योगों में से अन्यतर एक योग कहना चाहिये। क्योंकि पर्याप्त बादर वायुकाय में से कितने ही जीवों के वैक्रियशरीर होता है। अतः योग के स्थान पर तीन का अंक रखकर इस प्रकार अंकस्थापना करनी चाहिये—

मिथ्यात्व	इन्द्रिय	अविरति	कायवध	कषाय	युगल	वेद	योग
१	१	१	४	२	१	३	

इन अंकों का क्रमशः गुणा करने पर सोलह बंधहेतुओं के चौबीस (२४) भंग होते हैं।

इन सोलह में भय को मिलाने पर सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी चौबीस भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने से भी सत्रह बंधहेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग होते हैं।

उक्त सोलह हेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग होंगे और कुल मिलाकर (२४+२४+२४+२४=९६) छियानवै भंग जानना चाहिये और अपर्याप्त, पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के बंधहेतुओं के कुल मिलाकर (१६०+९६=२५६) दो सौ छप्पन भंग होते हैं।

इस प्रकार से बादर एकेन्द्रिय के बंधहेतुओं और उनके भंगों का निर्देश करने के बाद अब पूर्व कथनशैली का अनुसरण करके पर्याप्त अपर्याप्त में से पहले अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के बंधहेतु और उनके भंगों का निर्देश करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त के पहला मिथ्यात्वगुणस्थान ही होने से जघन्यपद में मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती बादर एकेन्द्रिय की तरह सोलह बंधहेतु होते हैं। यहाँ पूर्ववत् भंग चौबीस (२४) होते हैं।

१. इन सोलह में भय को मिलाने पर सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर भी सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग होंगे।

उक्त सोलह हेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी चौबीस (२४) भंग जानना चाहिये।

इस प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के कुल मिलाकर (२४+२४+२४+२४=९६) छियानवै भंग होते हैं।

पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के बंधहेतु के भंग

पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के जघन्यपद में पूर्वोक्त सोलह बंधहेतु होते हैं। यहाँ सिर्फ एक औदारिकयोग ही होता है। अतएव योग के स्थान पर एक का अंक रखना चाहिये। जिससे अंकस्थापना का रूप इस प्रकार होगा—

मिथ्यात्व	इन्द्रिय-अविरति	कायवध	कषाय	युगल	वेद	योग
१	१	१	४	२	१	१

इन अंकों का अनुक्रम से गुणा करने पर सोलह बंधहेतु के आठ (८) भंग होते हैं।

१. इन सोलह में भय को मिलाने पर सत्रह हेतु होते हैं। इनके भी आठ (८) भंग जानना चाहिये।

२. अथवा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर भी सत्रह बंधहेतु होंगे। इनके भी आठ (८) भंग होते हैं।

उक्त सोलह हेतुओं में भय-जुगुप्सा को युगपत् मिलाने पर अठारह हेतु होते हैं। इनके भी आठ (८) भंग होते हैं और कुल मिलाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८+८+८+८=३२) बत्तीस भंग जानना चाहिये तथा अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय के कुल मिलाकर बंधहेतुओं के (९६+३२=१२८) एक सौ अट्ठाईस भंग होते हैं।

इस प्रकार से जीवस्थानों में बंधहेतु और उनके भंगों को जानना चाहिये।

अब अन्वय-व्यतिरेक का अनुसरण करके विशेष रूप से जो कर्म-प्रकृतियां जिस बंधहेतु वाली हैं, उनका प्रतिपादन करते हैं।

कर्मप्रकृतियों के विशेष बंधहेतु

सोलस मिच्छनिमित्ता बज्झहि पणतीस अविरईए य।
सेसा उ कसाएहि जोगेहि य सायवेयणीयं ॥१६॥

शब्दार्थ—**सोलस**—सोलह, **मिच्छनिमित्ता**—मिथ्यात्व के निमित्त से, **बज्झहि**—बंधती हैं, **पणतीस**—पैंतीस, **अविरईए**—अविरति से, **य**—और, **सेसा**—शेष, **उ**—और, **कसाएहि**—कषाय द्वारा, **जोगेहि**—योग द्वारा, **य**—और, **सायवेयणीयं**—सातावेदनीय।

गाथार्थ—सोलह प्रकृतियां मिथ्यात्व के निमित्त से और पैंतीस प्रकृतियां अविरति से और शेष प्रकृतियां कषाय से बंधती हैं एवं सातावेदनीय योगरूप हेतु से बंधती है।

विशेषार्थ—सामान्य से मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चारों सभी कर्मप्रकृतियों के बंधहेतु हैं। अर्थात् इन चारों हेतुओं के द्वारा सभी प्रकृतियों का प्रतिक्षण संसारी जीव के बंध होता रहता है। लेकिन इन हेतुओं में से भी किस के द्वारा मुख्यतया कितनी-कितनी प्रकृतियों का बंध हो सकता है, इस बात को गाथा में स्पष्ट किया है—

'सोलस मिच्छनिमित्ता'—अर्थात् सोलह प्रकृतियों के बंध में मिथ्यात्वरूप हेतु की मुख्यता है। यानी मिथ्यात्व न हो और शेष उत्तरवर्ती अविरत आदि बंधहेतु हों तो उन अविरति आदि उत्तर बंधहेतुओं के विद्यमान रहने पर भी उनका बंध नहीं होता है। इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार से अन्य उत्तर के बंधहेतुओं के लिए भी समझना चाहिये। अतएव इस प्रकार के अन्वय-व्यतिरेक[1] का विचार करने पर नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, एकेन्द्रिय आदि जातिचतुष्क, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुंडसंस्थान, सेवार्तसंहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्तनाम ये सोलह प्रकृतियां मिथ्यात्वरूप हेतु के विद्यमान रहने पर ही बंधती हैं और मिथ्यात्वरूप हेतु के अभाव में नहीं बंधती हैं।

उक्त सोलह प्रकृतियां मिथ्यात्वगुणस्थान में बंधती हैं और मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व आदि योग पर्यन्त चारों बंधहेतु होते हैं। अतएव इन सोलह प्रकृतियों के बंध में अविरति आदि हेतुओं का भी उपयोग होता है लेकिन उनके साथ अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध घटित नहीं होता है, मिथ्यात्व के साथ ही घटित होता है। क्योंकि जहाँ तक मिथ्यात्व रूप हेतु है, वहीं तक ये प्रकृतियां बंधती हैं। इसलिए इन सोलह प्रकृतियों के बंध में मिथ्यात्व मुख्य हेतु है और अविरति आदि गौण हेतु हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये। अतएव

'पणतीस अविरईए य'—अर्थात् स्त्यानर्द्धित्रिक, स्त्रीवेद, अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क, तिर्यंचत्रिक, पहले और अन्तिम को छोड़कर शेष मध्य के चार संस्थान, आदि के पांच संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, अनादेय, दुःस्वर, नीचगोत्र, अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, मनुष्यत्रिक और औदारिकद्विक रूप पैंतीस प्रकृतियां अविरति के निमित्त से बंधती हैं। यानी इन प्रकृतियों के बंध का मुख्य हेतु अविरति है तथा 'सेसा उ कसाएहि'—शेष प्रकृतियां यानी सातावेदनीय के बिना शेष अड़सठ प्रकृतियां कषाय द्वारा बंधती हैं। क्योंकि कषाय के साथ अन्वय-व्यतिरेक घटित होने से इन अड़सठ प्रकृतियों

---

१ कारण के सद्भाव में कार्य के सद्भाव को अन्वय और कारण के अभाव में कार्य के अभाव को व्यतिरेक कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को कषाय मुख्य बंधहेतु है तथा 'जोगहि य सायवेयणीयं' अर्थात् जहाँ तक योग पाया जाता है, वहाँ तक सातावेदनीय का बंध होता है और योग के अभाव में बंध नहीं होने से सातावेदनीय का योग बंध-हेतु है।[1]

इस प्रकार से बंधयोग्य एक सौ बीस प्रकृतियों के बंध में सामान्य से तत्तत् बंधहेतु की मुख्यतया जानना चाहिये। लेकिन तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों के बंधहेतुओं में कुछ विशेषता होने से अब आगे की गाथा में तद्विषयक स्पष्टीकरण करते हैं—

तित्थयराहाराणं बंधे सम्मत्तसंजमा हेऊ।
पयडीपएसबंधा जोगेहिं कसायओ इयरे ॥२०॥

शब्दार्थ—**तित्थयराहाराणं**—तीर्थंकर और आहारकद्विक के, **बंधे**—बंध में, **सम्मत्तसंजमा**—सम्यक्त्व और संयम, **हेऊ**—हेतु, **पयडीपएसबंधा**—प्रकृति और प्रदेश बंध, **जोगेहिं**—योग द्वारा, **कसायओ**—कषाय द्वारा, **इयरे**—इतर—स्थिति और अनुभाग बंध।

गाथार्थ—तीर्थंकर और आहारकद्विक के बंध में सम्यक्त्व और संयम हेतु हैं तथा प्रकृतिबंध एवं प्रदेशबंध योग द्वारा तथा इतर—स्थिति और अनुभाग बंध कषाय द्वारा होते हैं।

विशेषार्थ—यद्यपि पूर्वगाथा में 'सेसा उ कसाएहिं' पद से तीर्थंकर-नाम और आहारकद्विक—आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग इन तीन प्रकृतियों के बंधहेतुओं का भी कथन किया जा चुका है कि शेष रही प्रकृतियों का बंध कषायनिमित्तक है और उन शेष रही प्रकृतियों में इन तीनों प्रकृतियों का भी समावेश हो जाता है। लेकिन ये तीनों

---

१ कर्मग्रन्थ टीका में सोलह का हेतु मिथ्यात्व को, पैंतीस का हेतु मिथ्यात्व और अविरति इन दो को, पैंसठ का योग के बिना मिथ्यात्व, अविरति, कषाय इन तीन को और सातावेदनीय का मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग इन चारों को बंधहेतु बताया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियां विशिष्ट हैं, अतः इनके बंध में कषाय के साथ विशेष निमित्तान्तर की अपेक्षा होने से पृथक् निर्देश किया है—

तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक के बंध में अनुक्रम से सम्यक्त्व तथा संयम हेतु हैं। यानी तीर्थंकरनाम के बंध में सम्यक्त्व और आहारकद्विक के बंध में संयम हेतु है।

उक्त कथन में तीर्थंकरनामकर्म का बंध सम्यक्त्व और आहारकद्विक का संयम सापेक्ष मानने पर जिज्ञासु अपना तर्क प्रस्तुत करता है—

शंका—यदि आप सम्यक्त्व को तीर्थंकरनामकर्म का बंधहेतु कहते हैं तो क्या औपशमिक सम्यक्त्व हेतु है अथवा क्षायिक है या क्षायोपशमिक है ? लेकिन इन तीनों में दोषापत्ति है। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

यदि तीर्थंकरनामकर्म के बंध में औपशमिक सम्यक्त्व को बंधहेतु के रूप में माना जाये तो उपशांतमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में भी औपशमिक सम्यक्त्व का सद्भाव होने से वहाँ भी तीर्थंकरनामकर्म का बंध मानना पड़ेगा।

यदि क्षायिक सम्यक्त्व को बंधहेतु कहो तो सिद्धों में भी उसके बंध का प्रसंग सम्भव मानना पड़ेगा। क्योंकि उनके क्षायिक सम्यक्त्व ही पाया जाता है।

यदि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहो तो अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय में उसके बंधविच्छेद का प्रसंग उपस्थित होगा। क्योंकि उस समय क्षायोपशमिक सम्यक्त्व नहीं होता है और तीर्थंकरनामकर्म के बंध का विच्छेद तो अपूर्वकरण गुणस्थान के छट्ठे भाग में होता है।

इसलिए कोई भी सम्यक्त्व तीर्थंकरनामकर्म का बंधहेतु नहीं माना जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार आहारकद्विक का बंधहेतु संयम कहा जाये तो क्षीण-मोह आदि गुणस्थानों में भी उसके बंध का प्रसंग प्राप्त होगा। क्योंकि वहाँ विशेषतः अतिनिर्मल चारित्र का सद्भाव है किन्तु वहाँ बंध तो होता नहीं है। अतएव आहारकद्विक का संयम बंधहेतु नहीं माना जा सकता है।

समाधान—उक्त शंका का समाधान करते हुए आचार्यश्री समग्र स्थिति को स्पष्ट करते हैं—

हमारे अभिप्राय को न समझ सकने के कारण उक्त तर्क असंगत हैं। क्योंकि 'तित्थयराहाराणं बंधे सम्मत्तसंजमा हेऊ' पद द्वारा साक्षात् सम्यक्त्व और संयम ही मात्र तीर्थंकर और आहारकद्विक के बंधहेतु रूप में नहीं कहे हैं, किन्तु सहकारी कारणभूत[1] विशेषहेतु रूप में उनका निर्देश किया है। मूल कारण तो इन दोनों का कषायविशेष ही है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है—'सेसा उ कसाएहि'--शेष प्रकृतियों का कषायरूप बंधहेतु के द्वारा बंध होता है और तीर्थंकर-नामकर्म के बंध में हेतुरूप से होने वाली कषाय औपशमिक आदि किसी भी सम्यक्त्वरहित होती नहीं हैं। अर्थात् औपशमिक आदि किसी भी सम्यक्त्व से रहित मात्र कषायविशेष ही तीर्थंकरनाम के बंध में हेतुभूत नहीं होती हैं तथा औपशमिकादि किसी भी सम्यक्त्वयुक्त कषायविशेष सभी जीवों को उन प्रकृतियों के बंध में हेतु नहीं होती हैं और अपूर्वकरण के छठे भाग के बाद भी बंधहेतु रूप में नही होती हैं तथा अप्रमत्तसयतगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण के छठे भाग तक में हो सम्भव कतिपय प्रतिनियत कषायविशेष ही आहारकद्विक के बंध में हेतु हैं।

---

१ साथ रहकर जो कारण रूप में हो उसे सहकारी कारण कहते हैं। विशिष्ट कषायरूप हेतु के साथ रहकर सम्यक्त्व और संयम तीर्थंकर और आहारकद्विक के बंधहेतु होते हैं, इसलिए सम्यक्त्व और संयम सहकारी कारण कहलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि चतुर्थ गुणस्थान से लेकर आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक की कषायविशेष औपशमिक आदि किसी भी सम्यक्त्व से युक्त तीर्थंकरनामकर्म के बंध में हेतु होती हैं और आहारकद्विक के बंध में पूर्व में कहे गये अनुसार विशिष्ट कषायें हेतुरूप होती हैं। इसलिए किसी प्रकार का दोष नहीं है।

प्रश्न—औपशमिकादि में से किसी भी सम्यक्त्व से युक्त जो कषाय-विशेष तीर्थंकरनामकर्म के बंध में हेतु हैं, उनका क्या स्वरूप है? अर्थात् किस प्रकार की कषायविशेष तीर्थंकरनाम के बंध में कारण हैं?

उत्तर—परमात्मा के परमपवित्र और निर्दोष शासन द्वारा जगत-वर्ती जीवों के उद्धार करने की भावना आदि परमगुणों के समूहयुक्त कषायविशेष तीर्थंकरनामकर्म के बंध में कारण हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

भविष्य में जो तीर्थंकर होने वाले हैं, उनको औपशमिक आदि कोई भी सम्यक्त्व जब प्राप्त होता है तब उसके बल से सम्पूर्ण संसार के आदि, मध्य और अन्त भाग में निर्गुणता का निर्णय करके यानी सम्पूर्ण संसार में चाहे उसका कोई भी भाग हो, उसमें आत्मा को उन्नत करने वाला कोई तत्त्व नहीं है, ऐसा निर्णय करके उक्त आत्मा तथाभव्यत्व के योग से इस प्रकार का विचार करती है—

अहो! यह आश्चर्य की बात है कि सकल गुणसम्पन्न तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित, स्फुरायमान तेज वाले प्रवचन के विद्यमान होते हुए भी सच्चा मार्ग महामोह रूप अंधकार द्वारा आच्छादित, व्याप्त हो रहा है। इस गहन संसार में मूढ़मति वाली आत्मायें भटकती ही रहती हैं, इसलिए मैं इस पवित्र प्रवचन द्वारा इन जीवों को इस संसार से पार उतारूँ और इस प्रकार से विचार करके परार्थ-व्यसनी करुणादि गुणयुक्त और प्रत्येक क्षण परोपकार करने में तत्पर वह आत्मा सदैव जिस-जिस प्रकार से भी दूसरों का उपकार हो सकता है, दूसरों का भला हो सकता है, उनका उद्धार हो सकता है, तदनुरूप प्रवृत्ति करती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, किन्तु मात्र विचार करके ही नहीं रह जाती है । इस प्रकार से प्राणियों का कल्याण करने के द्वारा उपकार करने से तीर्थंकरनाम-कर्म का उपार्जन करके परम पुरुषार्थ—मोक्ष के साधनरूप तीर्थंकरत्व को प्राप्त करती है।

इस प्रकार की सभी आत्माओं को संसार से पार उतारने की तीव्र भावना द्वारा आत्मा तीर्थंकरनामकर्म को बांधती है और सम्यक्त्व प्राप्त करके जो अपने स्वजनादि के विषय में यथोक्त चिन्ता-विचार करती है, यानी मात्र स्वजनों को ही संसारसागर से पार उतारने का विचार करती है और तदनुरूप प्रवृत्ति करती है, वह धीमान आत्मा गणधरलब्धि प्राप्त करती है और जो आत्मा सम्यक्त्व प्राप्त होने पर भव की निर्गुणता को देखकर निर्वेद होने से अपने ही उद्धार की इच्छा करती है और तदनुरूप प्रवृत्ति करती है, वह मुंडकेवली होती है, इत्यादि कथन प्रासंगिक रूप से समझ लेना चाहिये।

अब गाथा के उत्तरार्ध का आशय स्पष्ट करते हैं कि कर्मबंध के चार प्रकार हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग (रस) और प्रदेश। उनमें से 'पयडीपएसबंधा जोगेहि' अर्थात् सभी कर्मप्रकृतियों का प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग से होता है तथा 'कसायओ इयरे' अर्थात् कषाय के द्वारा इतर—शेष रहे स्थितिबंध और अनुभाग (रस) बंध का बंध होता है। कर्मों में जो ज्ञानाच्छादकत्व आदि रूप स्वभावविशेष उसे प्रकृति-बंध कहते हैं और जिन कर्म-परमाणुओं का आत्मा के साथ नीरक्षीरवत् सम्बन्ध होता है, वह प्रदेशबंध है। कर्मों का आत्मा के साथ तीस कोडा-कोडी सागरोपम आदि कालपर्यन्त सम्बद्ध रहना स्थितिबंध कहलाता है तथा कर्मपुद्गल में अल्पाधिक प्रमाण में ज्ञानादि गुणों को आच्छा-दित करने वाले एवं हीनाधिक रूप में सुख-दुखादि उत्पन्न करने वाले ऐसे एकस्थानक आदि रस विशेष को अनुभागबंध कहते हैं।

इस प्रकार से चौदह गुणस्थानों और चौदह जीवस्थानों में बंधहेतु और उनके भंगों का विचार एवं तत्तत् कर्मप्रकृतियों के सामान्य बध-हेतुओं का कथन जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब परीषहों का कर्मोदयजन्यत्व सिद्ध करते हैं कि बद्धकर्मों का यथायोग्य रीति से उदय होने पर साधुओं को अनेक प्रकार के परीषह उपस्थित होते हैं। अतएव उन परीषहों में जिस-जिस कर्म का उदय निमित्त है, उसको तीन गाथाओं द्वारा बतलाते हैं।

सयोगिकेवलीगुणस्थान में प्राप्त परीषह

खुप्पिवासुण्हसीयाणि सेज्जा रोगो वहो मलो।
तणफासो चरीया य दंसेक्कारस जोगिसु ॥२१॥

शब्दार्थ— **खुप्पिवासुण्हसीयाणि**— क्षुधा, पिपासा, उष्ण और शीत, **सेज्जा**— शैया, **रोगो**—रोग, **वहो**—वध, **मलो**—मल, **तणफासो**—तृणस्पर्श, **चरीया**— चर्या, **य**—और, **दंस**—दंश, **एक्कारस**—ग्यारह, **जोगिसु**—योगी (सयोगिकेवली) गुणस्थान में।

गाथार्थ— क्षुधा (भूख), पिपासा (प्यास), उष्ण (गरमी), शीत (सरदी), शैया, रोग, वध, मल, तृणस्पर्श, चर्या और दंश ये ग्यारह परीषह सयोगिकेवलीगुणस्थान में होते हैं।

विशेषार्थ— क्षुधा, पिपासा आदि बाईस परीषहों[1] में से सयोगिकेवलीगुणस्थान में संभव परीषहों को गाथा में बतलाया है। कारण सहित जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

यद्यपि गाथा में परीषह शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है, तथापि उनका प्रकरण होने से गाथागत पदों के साथ यथायोग्य रीति से जोड़कर इस प्रकार आशय समझना चाहिये—

---

१. क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।

क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शैया, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये बाईस परीषह होते है।

—तत्त्वार्थसूत्र ९/९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुधापरीषह, पिपासापरीषह, उष्णपरीषह, शीतपरीषह, रोग-परीषह, मलपरीषह, तृणस्पर्शपरीषह, चर्यापरीषह और दंशमशक-परीषह, ये ग्यारह परीषह सामान्य श्रमणवर्ग में ही नहीं अपितु केवली भगवन्तों में भी अपना प्रभाव प्रदर्शित करते है।[1] अतः कर्मोदय से इस प्रकार के परीषह जब उपस्थित हों तब मुनियों को प्रवचनोक्त विधि के अनुसार समभाव पूर्वक सहन करके उन पर विजय प्राप्त करना चाहिये। इन पर जय प्राप्त करने का मार्ग इस प्रकार है—

निर्दोष आहार की गवेषणा करने पर भी उस प्रकार का निर्दोष आहार नहीं मिलने से अथवा अल्प परिमाण में प्राप्त होने से जिनकी क्षुधा (भूख) शांत नहीं हुई है और असमय में गोचरी हेतु गमन करने की जिनका इच्छा, आकांक्षा नहीं है, आवश्यक क्रिया में किंचिन्मात्र भी स्खलना होना सह्य नहीं है, स्वाध्याय, ध्यान और भावना में जिनका मन मग्न है और प्रबल क्षुधाजन्य पीड़ा उत्पन्न होने पर भी अनेषणीय आहार का जिन्होंने त्याग किया है, ऐसे मुनिराजों का अल्पमात्र में भी ग्लानि के बिना भूख से उत्पन्न हुई पीड़ा को समभाव पूर्वक सहन करना क्षुधापरीषहजय कहलाता है। इसी प्रकार से पिपासापरीषह-जय के विषय में भी समझना चाहिये।

सूर्य की अत्यंत उग्र किरणों के ताप द्वारा सूख जाने से जिनके पत्ते गिर गये हैं अतः छाया प्राप्त करना शक्य नहीं रहा है, ऐसे वृक्षों वाली अटवी में अथवा अन्यत्र कि जहाँ उग्र ताप लगता है, वहाँ जाते या रहते तथा अनशन आदि तपविशेष के कारण जिनके पेट में अत्यंत दाह उत्पन्न हुआ है एवं अत्यंत उष्ण और कठोर वायु के संसर्ग से तालू और गला सूख रहा है, ऐसे मुनिराजों का जीवों को पीड़ा न पहुंचाने की भावना से अप्राशुक जल में अवगाहन—स्नान करने के लिए उत-

---

१. एकादश जिने।

—तत्त्वार्थसूत्र ९/११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रने या वैसे पानी से स्नान की अथवा अकल्पनीय पानी को पीने की इच्छा नहीं करके उष्णताजन्य पीड़ा को समभाव से सहन करना उष्णपरीषहजय है।

अत्यधिक सरदी पड़ने पर भी अकल्पनीय वस्त्र का त्याग और प्रवचनोक्त विधि का अनुसरण करके कल्पनीय वस्त्र का उपयोग करने वाले तथा पक्षी की तरह अपने एक निश्चित स्थान का निश्चय नहीं होने के कारण वृक्ष के नीचे, शून्य गृह में अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी स्थान में रहते हुए वहाँ हिमकणों द्वारा अत्यंत शातल पवन का सम्बन्ध होने पर भी उसके प्रतिकार के लिये अग्नि आदि के सेवन करने की इच्छा नहीं करने वाले मुनिराज का पूर्वानुभूत शीत को दूर करने के कारणों को याद नहीं करते हुए शीत से उत्पन्न पीड़ा को समभाव से सहन करना शीतपरीषहजय कहलाता है।

तीक्ष्ण कर्कश धार वाले छोटे-मोटे बहुत से कंकड़ों से व्याप्त शीत अथवा उष्ण पृथ्वी पर अथवा कोमल और कठिन भेद वाले चंपक आदि के पाट पर निद्रा का अनुभव करते हुए प्रवचनोक्त विधि का अनुसरण करके कठिनादि शैया से होने वाली पीड़ा को समभाव से सहन करना शैयापरीषहजय है।

किसी भी प्रकार का रोग होने पर हानि-लाभ का विचार करके शास्त्रोक्त विधि के अनुसार चारित्र में स्खलना न हो, इस प्रकार की प्रतिक्रिया—औषधादि उपचार करना रोगपरीषहजय कहलाता है।

तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र, तलवार आदि के द्वारा शरीर के चीरे जाने अथवा मुद्गर आदि शस्त्रों के द्वारा ताड़ना दिये जाने पर भी मारने वाले पर अल्पमात्र कुछ भी मनोविकार नहीं करते हुए इस प्रकार का विचार करना कि यह पूर्व में बांधे हुए मेरे कर्मों का ही फल है, यह विचारे अज्ञानी मुझे कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकते हैं, ये तो निमित्तमात्र हैं तथा ये लोग तो मेरे विनश्वर स्वभाव वाले शरीर में पीड़ा उत्पन्न करते हैं, किन्तु मेरे ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप अंतरंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणों को किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुंचा सकते हैं, इस प्रकार की भावना भाते हुए बांस के छिलके उतारने के समान शरीर को छेदन-भेदन करने वाले पर समदर्शी मुनिराजों का वध से होने वाली पीड़ा को समभाव से सहन करना वधपरीषहजय कहलाता है।

जलकायिक आदि जीवों को पीड़ा आदि न होने देने के लिए यावज्जीवन स्नान नहीं करने के व्रत को धारण करने वाले, उग्र सूर्य-किरणों के ताप से उत्पन्न पसीने के जल के सम्बन्ध से वायु से उड़ी हुई पुष्कल धूलि के लगने से जिनका शरीर अत्यन्त मलीन हो गया है, फिर भी मन में उस मल को दूर करने की इच्छा भी नहीं होती है, परन्तु सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप निर्मल जल के प्रवाह द्वारा कर्मरूप मैल को ही दूर करने में जो प्रयत्नवंत है, ऐसे मुनिराजों का मल से होने वाली पीड़ा को समभावपूर्वक सहन करना मलपरीषहजय कहलाता है।

गच्छ में रहने वाले अथवा गच्छ में नहीं रहने वाले मुनिराजों को दर्भादि घास के उपयोग की आज्ञा है। उसमें जिनको स्वगुरु ने दर्भादि घास पर शयन करने की अनुज्ञा दी है, वे मुनिराज दर्भादि घास पर संथारा और उत्तरपट बिछाकर सो जाते हैं अथवा जिनके उपकरणों को चोर चुरा ले गये हैं अथवा अतिजीर्ण हो जाने से फट गये हैं, ऐसे मुनिराज अपने पास संथारा और उत्तरपट नहीं होने से दर्भादि घास बिछाकर सो जाते हैं। किन्तु वैसे घास पर सोते हुए पूर्व में अनुभव की गई मखमल आदि की शैया को स्मरण न करके उस तृण —घास के अग्र भाग आदि के चुभने से होने वाली पीड़ा को समभाव-पूर्वक सहन करना तृणस्पर्शपरीषह-विजय कहलाता है।

जिन महान आत्माओं ने बंध और मोक्ष का स्वरूप जाना है, जो पवन की तरह निःसगता धारण करते हैं, जो देश और काल का अनुसरण करके संयमविरोधी-मार्ग में जाने के त्याग करने वाले हैं तथा जो आगमोक्त मासकल्प की मर्यादा के अनुरूप विहार करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले हैं, ऐसे मुनिराजों का कठोर कंकर और कांटों आदि के द्वारा पैरों में अत्यन्त पीड़ा होने पर भी पूर्व में सेवित वाहनादि में जाने का स्मरण नहीं करते हुए ग्रामानुग्राम विहार करना चर्यापरीषहजय कहलाता है।

डांस, मच्छर, मक्खी, खटमल, कीड़ा, मकोड़ा, बिच्छू आदि जन्तुओं द्वारा पीड़ित होने पर भी उस स्थान से अन्यत्र नहीं जाकर और उन डांस, मच्छर आदि जन्तुओं को किसी भी प्रकार से पीड़ा नहीं पहुंचाते हुए एवं बीजना आदि के द्वारा उनको दूर भी नहीं करते हुए उन डांस, मच्छर आदि से होने वाली बाधा को समभाव से सहन करना दंशपरीषहविजय है।

ये ग्यारह परीषह सयोगिकेवली भगवान को भी सम्भव हैं।

अब दो गाथाओं द्वारा परीषहों की उत्पत्ति में किस कर्म का उदय हेतु है ? और कौन उनके स्वामी हैं ? यह बतलाते हैं !

परीषहोत्पत्ति में कर्मोदयहेतुत्व व स्वामी

वेयणीयभवा एए पन्नानाणा उ आइमे।
अट्ठमंमि अलाभोत्थो छउमत्थेसु चोद्दस ॥२२॥
निसेज्जा जायणाकोसो अरई इत्थिनग्गया।
सक्कारो दंसणं मोहा बावीसा चेव रागिसु ॥२३॥

शब्दार्थ—वेयणीयभवा—वेदनीय कर्म से उत्पन्न, **एए**—ये, **पन्नानाणा**—प्रज्ञा और अज्ञान, **उ**—और, **आइमे**—आदि के (ज्ञानावरणकर्म के), **अट्ठमंमि**—आठवें के (अन्तराय के), **अलाभोत्थो**—अलाभ से उत्पन्न, **छउमत्थेसु**—छद्मस्थों में, **चोद्दस**—चौदह।

निसेज्जा—निषद्या, **जायणा**—याचना, **कोसो**—आक्रोश, **अरई**—अरति, **इत्थि**—स्त्री, **नग्गया**—नग्नता, **सक्कारो**—सत्कार, **दंसणं**—दर्शन, **मोहा**—मोह के, **बावीसा**—बाईस, **च**—और, **एव**—ही, **रागिसु**—सरागियों में।

गाथार्थ—ये (पूर्वोक्त ग्यारह परीषह) वेदनीयकर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं और प्रज्ञा एवं अज्ञान परीषह ज्ञानावरणकर्म का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय होने पर उत्पन्न होते हैं, अन्तरायकर्म का उदय होने से अलाभ से उत्पन्न परीषह होते हैं। छद्मस्थ जीवों में ये चौदह परीषह पाये जाते हैं।

निषद्या, याचना, आक्रोश, अरति, स्त्री, नग्नता, सत्कार और दर्शन ये आठ परीषह मोहकर्म के उदय से होते हैं। सरागी जीवों में ये सभी बाईसों ही परीषह पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में सभी परीषहों की उत्पत्ति का कारण एवं उन-उनके स्वामियों का निर्देश किया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

'वेयणीयभवा एए' अर्थात् पूर्वोक्त क्षुधा, पिपासा आदि ग्यारह परीषह वेदनीयकर्म से उत्पन्न होते हैं।[1] उक्त ग्यारह परीषह इतने सामान्य हैं कि सभी संसारी जीवों में, यहाँ तक कि जो केवली भगवान इस संसार में शरीर आदि योग सहित विद्यमान हैं, उनमें भी ये सम्भव हैं। इसी कारण ये ग्यारह परीषह सयोगिकेवलीगुणस्थान तक माने जाते हैं।

'पन्नानाणा उ आइमे'—ज्ञानावरणकर्म का उदय प्रज्ञा और अज्ञान परीषह के उत्पन्न होने में हेतु है।[2] ज्ञानावरणकर्म के यथायोग्य उदय से ज्ञान का विकास, अविकास देखा जाता है। इसीलिए इन दो परीषहों की उत्पत्ति में ज्ञानावरणकर्म का उदय हेतु बतलाया है। इनमें से अंग, उपांग, पूर्व, प्रकीर्णक आदि शास्त्रों में विशारद एवं व्याकरण, न्याय और अध्यात्म शास्त्र में निपुण ऐसे सभी मेरे सामने सूर्य के समक्ष जुगनू की तरह निस्तेज हैं, इस प्रकार के अभिमानजन्य ज्ञान के आनन्द का निरास करना, त्याग करना, शमन करना प्रज्ञापरीषह-विजय कहलाता है तथा यह अज्ञ है, पशुतुल्य है, कुछ भी नहीं

---

१ वेदनीये शेषा। —तत्त्वार्थसूत्र ९।१६

२ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। —तत्त्वार्थसूत्र ९।१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझता है आदि, इस प्रकार के तिरस्कार भरे हुए वचनों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हुए, परम दुष्कर तपस्यादि क्रिया में रत—सावधान और नित्य अप्रमत्तचित्त होते हुए भी मुझे अभी तक ज्ञानातिशय उत्पन्न नहीं होता है, इस प्रकार का विचार करना किन्तु किंचिन्मात्र भी विकलता उत्पन्न नहीं होने देना अज्ञानपरीषहजय कहलाता है।

'अट्ठमंमि अलाभोत्थो' अर्थात् अन्तरायकर्म का उदय—विपाकोदय होने पर अलाभपरीषह सहन करने का अवसर प्राप्त होता है। वह इस प्रकार समझना चाहिये—

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विहार करते हुए सम्पत्ति की अपेक्षा बहुत से उच्च-नीच-मध्यम घरों में भिक्षा को प्राप्त नहीं करके भी असंक्लिष्ट मन वाले और दातार की परीक्षा करने में निरुत्सुक होते हुए 'अलाभ मुझे उत्कृष्ट तप है' ऐसा विचार करके अप्राप्ति को अधिक गुण वाली मानकर अलाभजन्य परीषह को समभावपूर्वक सहन करना अलाभ-परीषहजय कहलाता है।

इस प्रकार पूर्व गाथा में कहे गए ग्यारह और यहाँ बताये प्रज्ञा, अज्ञान एवं अलाभ ये तीन, कुल मिलाकर चौदह परीषह छद्मस्थ-वीतराग उपशांतमोह और क्षीणमोह गुणस्थान में होते हैं तथा संज्वलनलोभ की सूक्ष्म किट्टियों का अनुभव करने के कारण वीतराग-छद्मस्थ सदृश जैसा होने से सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में भी ये चौदह परीषह होते हैं।[1] क्योंकि सम्पूर्ण मोहनीय के क्षीण होने और अत्यन्त सूक्ष्म लोभ का उदय स्वकार्य करने में असमर्थ होने से सूक्ष्मसंपराय-गुणस्थान में मोहनीयकर्मजन्य कोई भी परीषह नहीं होता है। अतः दसवें गुणस्थान में चौदह परीषहों का कथन विरुद्ध नहीं है।

अब शेष रहे निषद्या आदि आठ परीषहों की उत्पत्ति की कर्महेतुता बतलाते हैं—

---

१ सूक्ष्मसंपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।

—तत्त्वार्थसूत्र ९।१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष रहे आठ परीषहों में पहली परीषह है—निषद्या। निषद्या उपाश्रय को कहते हैं। अर्थात् 'निषीदन्ति अस्याम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार साधु जिसके अन्दर स्थान करते हैं, वह निषद्या कहलाती है। स्त्री, पशु और नपुंसक से विहीन और जिसमें पहले स्वयं रहे नहीं ऐसे श्मशान, उद्यान, दानशाला या गुफा आदि में वास करते हुए और सर्वत्र अपने इन्द्रियजन्य ज्ञान के प्रकाश द्वारा परीक्षित प्रदेश में अनेक प्रकार के नियमों और क्रियाओं को करते हुए सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं की भयंकर शब्दध्वनियों—स्वर-गर्जनाओं के सुनाई देने पर भी जिनको भय उत्पन्न नहीं हुआ है, ऐसे मुनिराजों का उपस्थित उपसर्गों का सहन करने पूर्वक मोक्षमार्ग से च्युत न होना निषद्या-परीषहजय कहलाता है।

बाह्य और आभ्यन्तर तपोनुष्ठान में परायण, दीन वचन और मुख पर ग्लानि का त्याग करके आहार, वसतिका—स्थान, वस्त्र, पात्र और औषधि आदि वस्तुओं को प्रवचनोक्त विधि के अनुसार याचना करते मुनिराजों का—साधु का सभी कुछ मांगा हुआ होता है, अयाचित कुछ भी नहीं होता है, इस प्रकार का विचार करके लघुताजन्य अभिमान को सहन करना अर्थात् मेरी लघुता—हीनता दिखेगी, ऐसा जरा भी अभिमान उत्पन्न नहीं होने देना याचनापरीषहजय कहलाता है।

क्रोधरूप अग्नि-ज्वाला को उत्पन्न करने में कुशल, मिथ्यात्वमोह के उदय से मदोन्मत्त पुरुषों द्वारा उच्चारित—कहे गये ईर्ष्यायुक्त, तिरस्कारजनक और निन्दात्मक वचनों को सुनने पर भी तथा उनका प्रतिकार करने में समर्थ होने पर भी क्रोधादि कषायोदय रूप निमित्त से उत्पन्न हुए पापकर्म का विपाक अत्यन्त दुरन्त है, ऐसा चिन्तन करते हुए अल्पमात्रा में भी कषाय को अपने हृदय में स्थान न देना आक्रोश-परीषहविजय कहलाता है।

सूत्र (शास्त्र) के उपदेशानुसार विहार करते अथवा रहते किसी समय यदि अरति उत्पन्न हो तो भी स्वाध्याय, ध्यान, योग और भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप धर्म में रमणता द्वारा अरति का त्याग करना अरतिपरीषहजय कहलाता है।

आराम—बगीचा, घर या इसी प्रकार के अन्य किसी एकान्त स्थान में वास करते, युवावस्था के मद और विलास—हाव-भाव द्वारा प्रमत्त हुई, मदोन्मत्त और शुभ मनःसंकल्प का नाश करने वाली स्त्रियों के विषय में भी अत्यन्त वशीभूत किया है इन्द्रियों और मन को जिन्होंने ऐसे मुनिराजों का यह अशुचि से भरपूर मांस का पिंड है, इस प्रकार की शुभ भावना के वश उन स्त्रियों के विलास, हास्य, मृदुभाषण, विलासपूर्वक निरीक्षण और मोह उत्पन्न करे उस प्रकार की गति रूप काम के बाणों को निष्फल करना और जरा भी विकार न होने देना स्त्रीपरीषहजय कहलाता है।

नग्नता का अर्थ है नग्नत्व, अचेलकत्व और शास्त्र के उपदेश द्वारा वह अचेलकत्व अन्य प्रकार के वस्त्र को धारण करने रूप अथवा जीर्ण अल्पमूल्य वाले, फटे हुए और समस्त शरीर को नहीं ढांकने वाले वस्त्र को धारण करने के अर्थ में जानना चाहिये। क्योंकि वैसे वस्त्र पहने भी हों तो भी लोक में नग्नपने का व्यवहार होता है। जैसे नदी को पार करते पुरुष ने यदि अधोवस्त्र (धोती आदि) को शिर पर लपेटा हो तो भी नग्न जैसा व्यवहार होता है तथा जिससे जीर्णवस्त्र पहन रखा हो ऐसी कोई स्त्री बुनकर से कहे कि हे बुनकर! मुझे साड़ी दो, मैं नंगी हूँ! उसी प्रकार जीर्ण-शीर्ण अल्पमूल्य वाले और शरीर के अमुक भाग को ढांकने वाले वस्त्रों के धारक मुनिराज भी वस्त्र सहित होने पर भी वास्तव में अचेलक माने जाते हैं। जब ऐसा है तो उत्तम धैर्य और उत्तम सहनन से विहीन इस युग के साधुओं का भी संयम पालन करने के निमित्त शास्त्रोक्त वस्त्रों के धारण करने को अचेल-परीषह का सहन करना सम्यक् प्रकार से जानना चाहिये।

उक्त कथन को आधार बनाकर तार्किक अपनी आशंका उपस्थित करता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—आपने अचेलकत्व का जो रूप बतलाया है, उस प्रकार से तो अचेलकपना औपचारिक सिद्ध हुआ। अतएव उस प्रकार के अचेलकत्व रूप परीषह का सहन करना भी औपचारिक माना जायेगा और यदि ऐसा हो तो मोक्षप्राप्ति किस प्रकार होगी ? क्योंकि उपचरित—आरोपित वस्तु वास्तविक अर्थक्रिया नहीं कर सकती है। जैसे कि माणवक में अग्नि का आरोप करने से पाकक्रिया नहीं होती है।

उत्तर—यदि ऐसा हो तो निर्दोष आहार का सेवन करने वाले—खाने वाले मुनि के सम्यक् प्रकार से क्षुधापरीषह का सहन करना घटित नहीं हो सकता है। क्यों तुम्हारे कथनानुसार तो आहार के सर्वथा त्याग से क्षुधापरीषह का सहन करना घट सकता है और यदि ऐसा माने जाये तो अरिहन्त भगवान भी क्षुधापरीषहजयी नहीं कहलाये। क्योंकि भगवान भी छद्मावस्था में तुम्हारे मतानुसार निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं और इस प्रकार से निर्दोष आहार लेने वाले क्षुधापरीषह के विजेता तुम्हें इष्ट नहीं हैं, किन्तु ऐसा है नहीं अर्थात् इष्ट हैं। इस लिये जैसे अनेषणीय और अकल्पनीय भोजन के त्याग से क्षुधापरीषह का सहन करना इष्ट है, उसी प्रकार महामूल्य वाले, अनेषणीय और अकल्पनीय वस्त्र के त्याग से अचेलक परीषह का सहन करना मानना चाहिये।

उक्त दृष्टिकोण को आधार बनाकर ऐसा भी नहीं कहना चाहिये कि यदि ऐसा है तो सुन्दर स्त्री का त्याग करके कानी-कुबड़ी और कुरूप अंगवाली स्त्री का उपभोग करते हुए भी स्त्रीपरीषह सहन करने का प्रसंग उपस्थित होगा। क्योंकि सूत्र में स्त्री के उपभोग का सर्वथा निषेध किया है। किन्तु इसी प्रकार किसी भी सूत्र में जीर्ण और अल्प मूल्य वाले वस्त्रों का प्रतिषेध नहीं किया है। जिससे अतिप्रसंग दोष प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार अचेलकत्व के विषय में जानना चाहिये।

गाथा में 'सत्कार' शब्द ग्रहण किया है, लेकिन पद के एक देश को ग्रहण करने से समस्त पदों को ग्रहण करने के न्याय से यहाँ सत्कार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरस्कार पद ग्रहण करना चाहिये। वस्त्र, पात्र, आहार-पानी आदि देना 'सत्कार' और विद्यमान गुणों की प्रशंसा करना अथवा प्रणाम, अभ्युत्थान, आसन देना आदि 'पुरस्कार' कहलाता है।

सुदीर्घकाल से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला महातपस्वी, स्वपर-सिद्धान्त के रहस्य का वेत्ता, बारम्बार परवादियों का विजेता होने पर भी मुझे कोई प्रणाम नहीं करता है, भक्ति या बहुमान नहीं करता है, आदरपूर्वक आसन नहीं देता है एवं आहार-पानी और वस्त्र आदि भी नहीं देता है, इत्यादि प्रकार के दुष्प्रणिधान—अशुभ संकल्प का त्याग करना सत्कार-पुरस्कारपरीषहजय कहलाता है।

मैं समस्त पापस्थानों का त्यागी, उत्कृष्ट तपस्या करने वाला और निःसंग हूँ, फिर भी धर्म और अधर्म के फलरूप देव और नारकों को देख नहीं सकता हूँ। इसलिये उपवास आदि महातपस्या करने वाले को प्रातिहार्यविशेष उत्पन्न होते हैं आदि कथन प्रलापमात्र है, इस प्रकार का मिथ्यात्वमोहनीय के प्रदेशोदय के द्वारा जो अशुभ अध्यवसाय होता है, उसे दर्शनपरीषह कहते हैं। उसका जय इस रीति से करना चाहिये—मनुष्यों की अपेक्षा देव परम सुखी हैं, वर्तमान काल में दुषम-काल के प्रभाव से तीर्थंकर आदि महापुरुष नहीं है, जिससे परम सुख में आसक्त होने से और मनुष्यलोक में कार्य का अभाव होने से मनुष्यों को दृष्टिगोचर नहीं होते हैं और नारक अत्यंत तीव्र वेदना से व्याप्त होने के कारण और पूर्व में बांधे गये दुष्कर्मों के उदयरूप बंधन द्वारा बद्ध होने से आवागमन की शक्ति से विहीन हैं, जिससे वे भी यहाँ आते नहीं हैं। दुषमकाल के प्रभाव से उत्तम संहनन नहीं होने से उस प्रकार के उत्कृष्ट तप करने की शक्ति मुझ में नहीं है और न उस प्रकार के उत्कृष्ट भाव का उल्लास भी होता है कि जिसके द्वारा ज्ञानातिशय उत्पन्न होने से अपने-अपने स्थान में रहे हुए देव, नारकों को देखा जा सके। पूर्व के महापुरुषों में उत्तम संहनन के कारण तपोविशेष की शक्ति और उत्तम भावना थी कि जिससे उत्पन्न हुए ज्ञानातिशय द्वारा वे सब कुछ देख सकते थे। इस प्रकार से विचार करके ज्ञानी के वचन में रंच-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्र भी अश्रद्धा न करके मन को स्थिर करना दर्शनपरीषहविजय कहलाता है।

ये निषद्या आदि आठों परीषह मोहनीयकर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं।[1] जो इस प्रकार से समझना चाहिये—भय के उदय से निषद्या-परीषह, मान के उदय से याचनापरीषह, क्रोध के उदय से आक्रोशपरीषह, अरति के उदय से अरतिपरीषह, पुरुषवेद के उदय से स्त्रीपरीषह, जुगुप्सामोहनीय के उदय से नाग्न्यपरीषह, लोभ के उदय से सत्कार-पुरस्कारपरीषह और दर्शनमोह के उदय से दर्शनपरीषह उत्पन्न होते हैं।

ये सभी पहले क्षुधापरीषह से लेकर बाईसवें दर्शनपरीषह तक बाईसों परीषह रागियों अर्थात् पहले मिथ्यात्वगुणस्थान से लेकर नौवें अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान पर्यन्त सभी जीवों में होते हैं। यह कथन सामान्य से जानना चाहिये, लेकिन विशेषापेक्षा एक-एक जीव की अपेक्षा विचार किया जाये तो एक जीव में उन्नीस परीषह होते हैं। क्योंकि शीत और उष्ण, शैया, निषद्या और चर्या ये पांच परीषह परस्पर विरुद्ध होने से एक साथ नहीं होते हैं। इसी कारण एक जीव को एक समय में उन्नीस परीषह होना संभव हैं।[2]

इस प्रकार बंधहेतु नामक चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ। □

---

१. दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ। चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः।

तत्त्वार्थसूत्र ९/१४,१५

२ एकादयो भाज्या युगपदैकोनविंशतेः।

— तत्त्वार्थसूत्र ९/१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : १

बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार की मूल गाथाएँ

बंधस्स मिच्छ अविरइ कसाय जोगा य हेयवो भणिया।
ते पंच दुवालस पन्नवीस पन्नरस भेइल्ला ॥१॥
आभिग्गहियमणाभिग्गहं च अभिनिवेसियं चेव।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा होइ ॥२॥
छक्कायवहो मणइंदियाण अजमो असंजमो भणिओ।
इइ बारसहा सुगमो कसाय जोगा य पुव्वुत्ता ॥३॥
चउपच्चइओ मिच्छे तिपच्चओ मीससासणाविरए।
दुगपच्चओ पमत्ता उवसंता जोगपच्चइओ ॥४॥
पणपन्न पन्न तियछहियचत्त गुणचत्त छक्कचउसहिया।
दुजुया य वीस सोलह दस नव नव सत्त हेऊ य ॥५॥
दस दस नव नव अड पंच जइतिगे दु दुग सेसयाणेगो।
अड सत्त सत्त सत्तग छ दो दो दो इगि जुया वा ॥६॥
मिच्छत्त एक्ककायादिघाय अन्नयरअक्खजुयलुदओ।
वेयस्स कसायाण य जोगस्सणभयदुगछा वा ॥७॥
इच्चेसिमेग गहणे तस्संखा भंगया उ कायाणं।
जुयलस्स जुयं चउरो सया ठवेज्जा कसायाणं ॥८॥
जा बायरो ता घाओ विगप्प इइ जुगवबंधहेऊणं।
अणबंधि भयदुगंछाण चारणा पुण विमज्झेसु ॥९॥
अणउदयरहिय मिच्छे जोगा दस कुणइ जन्न सो कालं।
अणणुदओ पुण तदुवलगसम्मदिट्ठिस्स मिच्छुदए ॥१०॥
सासायणम्मि रूवं चय वेयहयाण नियगजोगाण।
जम्हा नपुंसउदय वेउव्वियमीसगो नत्थि ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि अविरए चय थीउदय विउव्विमीसकम्मइया।
इत्थिनपुंसगउदए ओरालियमीसगो जन्नो ॥१२॥
दोरूवाणि पमत्ते चयाहि एगं तु अप्पमत्तंमि।
जं इत्थिवेयउदए आहारगमीसगा नत्थि ॥१३॥
सव्वगुणठाणगेसु विसेसहेऊण एत्तिया संखा।
छायाललक्ख बासीइ सहस्स सय सत्त सयरी य ॥१४॥
सोलसट्ठारस हेऊ जहन्न उक्कोसया असन्नीणं।
चोद्दसट्ठारसऽपज्जस्स सन्निणो सन्निगुणगहिओ ॥१५॥
मिच्छत्तं एगं चिय छक्कायवहो ति जोग सन्निम्मि।
इंदियसंखा सुगमा असन्निविगलेसु दो जोगा ॥१६॥
एवं च अपज्जाणं बायरसुहुमाण पज्जयाण पुणो।
तिण्णेक्ककायजोगा सण्णिअपज्जे गुणा तिन्नि ॥१७॥
उरलेण तिन्नि छण्हं, सरीरपज्जत्तयाण मिच्छाणं।
सविउव्वेण सन्निस्स सम्ममिच्छस्स वा पंच ॥१८॥
सोलस मिच्छनिमित्ता बज्झहि पणतीस अविरईए य।
सेसा उ कसाएहि जोगेहि य सायवेयणीयं ॥१९॥
तित्थयराहाराणं बंधे सम्मत्तसंजमा हेऊ।
पयडीपएसबंधा जोगेहिं कसायओ इयरे ॥२०॥
खुप्पिवासुण्हसीयाणि सेज्जा रोगो वहो मलो।
तणफासो चरीया य दंसेक्कारस जोगिसु ॥२१॥
वेयणीयभवा एए पन्नाणाणा उ आइमे।
अट्ठमंमि अलाभोत्थो छउमत्थेसु चोद्दस ॥२२॥
निसेज्जा जायणाकोसो अरई इत्थिनग्गया।
सक्कारो दंसणं मोहा बावीसा चेव रागिसु ॥२३॥

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : २

१

दिगम्बर कर्मसाहित्य में गुणस्थानापेक्षा मूल बंधप्रत्यय

सामान्य से कर्मबंध के कारणों का विचार सभी कर्मसिद्धान्तवादियों ने किया है। जैन कर्मसिद्धान्त में इन कारणों का संक्षेप और विस्तार की दृष्टि से विविध रूपों में विवेचन किया है। इसके तीन प्रकार देखने में आते हैं—

(क) १ मिथ्यात्व, २ अविरति, ३ प्रमाद, ४ कषाय, ५ योग,
(ख) १ मिथ्यात्व, २ अविरति, ३ कषाय, ४ योग,
(ग) १ कषाय, २ योग।

उक्त तीन प्रकारों में से कार्मग्रन्थिक आचार्यों ने 'ख' विभाग के मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग इन चार को बंधहेतुओं के रूप में माना है और मूल तथा मूल के अवान्तर भेदों की अपेक्षा गुणस्थानों और मार्गणास्थानों में बंधहेतुओं और उनके भंगों की व्याख्या की है।

सामान्यतया श्वेताम्बर और दिगम्बर कर्मग्रन्थों में बंधहेतुओं और उनके भंगों में विशेष भिन्नता नहीं हैं और यदि कुछ है भी तो विवेचन करने के दृष्टिकोण की अपेक्षा से समझना चाहिए।

प्रस्तुत ग्रन्थ पंचसंग्रह में जिस प्रकार से गुणस्थानों में बंधप्रत्ययों का विचार किया है, उनका तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये दिगम्बर कर्म-साहित्य में किये गये बंधप्रत्ययों के विवेचन व भंगों को यहाँ उपस्थित करते हैं। संक्षेप में उक्त वर्णन इस प्रकार है—

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार कर्मबंध के मूल कारण हैं। इनके उत्तरभेद क्रम से पांच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह हैं। कुल मिलाकर ये सत्तावन कर्म-बंधप्रत्यय होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानों में मूल बंधहेतु इस प्रकार हैं—

प्रथम मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्वादि योग पर्यन्त चारों प्रत्ययों से कर्मबंध होता है। तदनन्तर दूसरे, तीसरे और चौथे— सासादन, मिश्रदृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानों में मिथ्यात्व को छोड़कर शेष तीन कारणों से कर्मबंध होता है। देशविरत नामक पांचवें गुणस्थान में दूसरा अविरत प्रत्यय मिश्र अर्थात् आधा और उपरिम दो प्रत्यय (कषाय और योग) कर्मबंध के कारण हैं। तदनन्तर छठे प्रमतविरतगुणस्थान से लेकर दसवें सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान पर्यन्त पांच गुणस्थानों में कषाय और योग इन दो कारणों से तथा ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें— उपशांतमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानों में केवल योगप्रत्यय से कर्मबंध होता है।

गुणस्थानों में नाना जीवों की अपेक्षा नाना समयों में उत्तरप्रत्ययों का विवरण इस प्रकार है—

१. मिथ्यात्वगुणस्थान में आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग इन दो प्रत्ययों के न होने से शेष पचपन उत्तरप्रत्ययों से कर्मबंध होता है।

२. सासादनगुणस्थान में पूर्वोक्त आहारकद्विक योग और पांचों मिथ्यात्व इन सात प्रत्ययों के न होने से पचास उत्तरप्रत्ययों से कर्मबंध होता है।

३. मिश्रगुणस्थान में अपर्याप्तकाल सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण ये तीन काययोग, अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क एवं उपर्युक्त सात इस प्रकार चौदह प्रत्यय न होने से तेतालीस उत्तरप्रत्यय होते हैं।

४. अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में मिश्रगुणस्थानवर्ती चौदह प्रत्ययों में से अपर्याप्त काल सम्बन्धी तीन प्रत्ययों के होने और शेष ग्यारह प्रत्ययों के न होने से कुल छियालीस उत्तरप्रत्यय होते हैं।

५. देशविरतगुणस्थान में त्रसवध, द्वितीय अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, अपर्याप्त काल सम्बन्धी तीनों काययोग, वैक्रियकाययोग तथा मिथ्यात्वपंचक, अनन्तानुबंधिकषायचतुष्क और आहारकद्विक इस प्रकार बीस प्रत्यय नहीं होने से सैंतीस उत्तरप्रत्यय होते हैं।

६. प्रमत्तविरतगुणस्थान में चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और आहारकद्विक ये ग्यारह योग तथा संज्वलनकषायचतुष्क, नव नोकषाय, इस प्रकार कुल चौबीस उत्तरप्रत्यय होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७-८. अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरण, इन दो गुणस्थानों में उपर्युक्त चौबीस प्रत्ययों में से आहारकद्विक के बिना शेष बाईस उत्तरप्रत्यय होते हैं।

९. अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सात भागों में बंधप्रत्ययों के होने का क्रम इस प्रकार है—

(क) प्रथम भाग में अपूर्वकरण के बाईस प्रत्ययों में से हास्यादि षट्क के बिना सोलह प्रत्यय होते हैं। (ख) द्वितीय भाग में नपुंसकवेद के बिना पन्द्रह, (ग) तृतीय भाग में स्त्रीवेद के बिना चौदह, (घ) चतुर्थ भाग में पुरुषवेद के बिना तेरह, (ङ) पंचम भाग में संज्वलनक्रोध के बिना बारह, (च) षष्ठ भाग में संज्वलनमान के बिना ग्यारह, (छ) सप्तम भाग में संज्वलनमाया के बिना बादर लोभ सहित दस प्रत्यय होते हैं।

१०. सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक-काययोग और सूक्ष्म संज्वलनलोभ ये दस उत्तरप्रत्यय होते हैं।

११,१२. उपशान्तमोह और क्षीणमोह इन दो गुणस्थानों में दसवें गुण-स्थान के दस उत्तरप्रत्ययों में से संज्वलनलोभ के बिना नौ-नौ उत्तरप्रत्यय होते हैं।

१३. सयोगिकेवलीगुणस्थान में प्रथम और अन्तिम दो-दो मनोयोग और वचनयोग तथा औदारिकद्विक और कार्मण काययोग ये सात उत्तरप्रत्यय होते हैं।

१४. अयोगिकेवलीगुणस्थान में कर्मबंध का कारणभूत कोई भी मूल या उत्तर प्रत्यय नहीं होता है।

उपर्युक्त कथन का सारांशदर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

गुणस्थान	मि.	सा.	मि.	अ.	दे	प्र.	अ प्र.	अ पू.	अनि.	सू	उ.	क्षी.	स.	अ.
मूलप्रत्यय	४	३	३	३	५/२	२	२	२	२	२	१	१	१	०
उत्तरप्रत्यय	५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६,१५,१४,१३, १२,११,१०	१०	९	९	७	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

दिगम्बर कर्मसाहित्य में गुणस्थानापेक्षा उत्तर बंधप्रत्ययों के भंग

दिगम्बर कर्मसाहित्यानुसार गुणस्थानों में मूल एवं उत्तर बंधप्रत्ययों का विवेचन करने के पश्चात् अब गुणस्थानों की अपेक्षा एक जीव के एक समय में सम्भव जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बंधप्रत्ययों और उनके भंगों का निर्देश करते हैं।

एक जीवापेक्षा गुणस्थानों में एक समय में सम्भव जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट उत्तर बंधप्रत्यय इस प्रकार हैं—

गुणस्थान नाम	जघन्य बंधप्रत्यय	मध्यम बंधप्रत्यय	उत्कृष्ट बंधप्रत्यय
मिथ्यात्व	१०	११ से १७	१८
सासादन	१०	११ से १६	१७
मिश्र	९	१० से १५	१६
अविरतसम्यग्दृष्टि	९	१० से १५	१६
देशविरत	८	९ से १३	१४
प्रमत्तविरत	५	६	७
अप्रमत्तविरत	५	६	७
अपूर्वकरण	५	६	७
अनिवृत्तिकरण	२	×	३
सूक्ष्मसंपराय	२	×	२
उपशान्तमोह	१	×	१
क्षीणमोह	१	×	१
सयोगिकेवली	१	×	१
अयोगिकेवली	×	×	×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रारूप में जघन्य और उत्कृष्ट बंधप्रत्ययों की संख्या गुणस्थानानुसार इस प्रकार समझना चाहिये कि मिथ्यात्वगुणस्थान में जघन्य दस और उत्कृष्ट अठारह बंधप्रत्यय होते हैं और इन दोनों की अन्तरालवर्ती संख्या ११ से १७ मध्यम बंधप्रत्ययों रूप है। इसी प्रकार से दूसरे आदि आगे के गुणस्थानों के मध्यम बंधप्रत्ययों के लिए जानना चाहिये।

गुणस्थानों में बंधप्रत्ययों के एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि संयोगी भंगों का करणसूत्र इस प्रकार है—

जिस विवक्षित राशि के भंग निकालना हों, उस विवक्षित राशि प्रमाण को लेकर एक-एक कम करते एक के अंक तक अंकों को स्थापित करना चाहिए और उसके नीचे दूसरी पंक्ति में एक के अंक से लेकर विवक्षित राशि के प्रमाण तक अंक लिखना चाहिये। पहली पंक्ति के अंकों को अंश या भाज्य और दूसरी पंक्ति के अंकों को हार (हर) या भागाहार कहते हैं।

ये भंग भिन्नगणित के अनुसार निकाले जाते हैं, अतः क्रम से स्थापित पहले भाज्यों के साथ अगले भाज्यों का और पहले भागाहारों के साथ अगले भागाहारों का गुणा करना चाहिये। पुनः भाज्यों के गुणा करने से जो राशि प्राप्त हो, उसमें भागाहारों के गुणा करने से प्राप्त राशि का भाग देना चाहिये और इस प्रकार जो प्रमाण आये, तत्प्रमाण ही विवक्षित स्थान के भंग जानना चाहिये।

इस नियम के अनुसार कायवध सम्बन्धी संयोगी भंगों को स्पष्ट करते हैं—

आदि के चार गुणस्थानों में षट्कायिक जीवों का वध सम्भव है। अतएव छह, पांच, चार, तीन, दो और एक इन भाज्य अंकों को क्रम से लिखकर पुनः उनके नीचे एक, दो, तीन, चार, पांच और छह इन भागाहार अंकों को लिखना चाहिए। जिससे इनका प्रारूप इस प्रकार होगा—

भाज्यराशि	६	५	४	३	२	१
हारराशि	१	२	३	४	५	६

यहाँ पर पहली भाज्यराशि छह में पहली हारराशि एक का भाग देने से छह आते हैं। जिसका अर्थ यह हुआ कि एकसंयोगी भंगों का प्रमाण छह होता है। पहली भाज्यराशि छह का अगली भाज्यराशि पांच से गुणा करने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणनफल तीस हुआ तथा पहली हारराशि एक का अगली हारराशि दो से गुणा करने पर हारराशि का प्रमाण दो हुआ। इस दो हारराशि का भाज्यराशि तीस में भाग देने पर भजनफल पन्द्रह आया। जो द्विसंयोगी भंगों का प्रमाण है। इसी क्रम से त्रिसंयोगी भंगों का प्रमाण बीस, चतुःसंयोगी भंगों का पन्द्रह, पंचसंयोगी भंगों का छह और षट्संयोगी भंगों का प्रमाण एक होगा। इन संयोगी भंगों की अंकसंदृष्टि इस प्रकार होगी—

१	२	३	४	५	६
६	१५	२०	१५	६	१

इसी करणसूत्र के अनुसार अन्य बंधप्रत्ययों के भी भंग प्राप्त कर लेना चाहिए।

अब मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों के बंधहेतु और उनके भंगों का निर्देश करते हैं।

मिथ्यात्वगुणस्थान—इस गुणस्थान में दस से लेकर अठारह तक बंधप्रत्यय होते हैं। यथाक्रम से बंधप्रत्यय और उनके भंग इस प्रकार हैं—

जो अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करके सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्वगुणस्थान को प्राप्त होता है, उसके एक आवली मात्र काल तक अनन्तानुबंधिकषायों का उदय नहीं होता है तथा सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीव का अन्तर्मुहूर्त काल तक मरण नहीं होता है। अतएव इस नियम के अनुसार मिथ्यादृष्टि के एक समय में पांच मिथ्यात्वों में से एक मिथ्यात्व, पांच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय, छह कायों में से एक काय, अनन्तानुबंधी के बिना शेष कषायों में से क्रोधादि तीन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलों में से कोई एक युगल और आहारकद्विक तथा अपर्याप्तकालभावी तीन मिश्र योग, इन पांच योगों के बिना पन्द्रह योगों में से शेष रहे दस योगों में से कोई एक योग, इस प्रकार जघन्य से दस बंधप्रत्यय होते हैं। जिनकी अंकस्थापना का प्रारूप इस प्रकार है—

मि०	इ०	का०	क०	वे०	हा०	यो०
१	१	१	३	१	२	१=१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दस बंधप्रत्ययों के भंग तेतालीस हजार दो सौ (४३२००) होते हैं। उनके निकालने का प्रकार यह है—

पांच मिथ्यात्व, छह इन्द्रियों, छह काय, चारों कषाय, तीन वेद, हास्यादि एक युगल और दस योग, इन्हें क्रम से स्थापित करके परस्पर में गुणा करने पर जघन्य दस बंधप्रत्ययों के भंग सिद्ध होते हैं। जो इस प्रकार हैं—

५×६×६×४×३×२×१०=४३२००।

ग्यारह बंधप्रत्यय बनने के तीन विकल्प हैं। यथाक्रम से वे इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक हास्यादि युगल एक और योग एक, कुल मिलाकर ११ ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। जिनका अंकानुरूप प्रारूप इस प्रकार होगा—

१+१+२+३+१+२+१=११।

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस तरह कुल ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। जिनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार होगी—

१+१+१+४+१+२+१=११।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-जुगुप्सा में से एक और योग एक, ये कुल मिलाकर ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। जिनका अंकन्यास का प्रारूप इस प्रकार जानना चाहिये—

१+१+१+३+१+२+१+१=११।

उपर्युक्त ग्यारह बंधप्रत्ययों के तीनों विकल्पों के भंग परस्पर में गुणा करने पर इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) ५×६×१५×४×३×२×१०=१०८००० भंग होते हैं।

(ख) ५×६×६×४×३×२×१३=५६१६० भंग होते हैं।

(ग) ५×६×६×४×३×२×२×१०=८६४०० भंग होते हैं।

इन तीनों विकल्पों के भंगों के प्रमाण को जोड़ने पर (१०८०००+५६१६०+८६४००=२५०५६०) ग्यारह बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का प्रमाण दो लाख पचास हजार पांच सौ साठ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से मिथ्यात्वगुणस्थान सम्बन्धी ग्यारह बंधप्रत्यय और उनके भंग हैं। अब बारह बंधप्रत्ययों और उनके भंगों को बतलाते हैं।

बारह बंधप्रत्यय बनने के पांच विकल्प हैं। यथाक्रम से वे इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार कुल मिलाकर बारह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकन्यास का प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+३+३+१+२+१=१२।

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, योग एक इस प्रकार कुल मिलाकर बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+४+१+२+१=१२।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकरचना का प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+२+३+१+२+१+१=१२।

(घ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्थादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार बारह बंधप्रत्यय होते हैं। जो अंकन्यास से इस प्रकार हैं—

१+१+१+४+१+२+१+१=१२।

(ङ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल (भय, जुगुप्सा) एक और योग एक, इस प्रकार बारह बंधप्रत्यय होते हैं। जिनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+१+३+१+२+२+१=१२।

उपर्युक्त बारह बंधप्रत्ययों के पांचों विकल्पों के भंग इस प्रकार होते हैं—

(क) ५×६×२०×४×३×२×१०=१४४००० भंग होते हैं।

(ख) ५×६×१५×४×३×२×१३=१४०४०० भंग होते हैं।

(ग) ५×६×१५×४×३×२×२×१०=२१६००० भंग होते हैं।

(घ) ५×६×६×४×३×२×२×१३=११२३२० भंग होते हैं।

(ङ) ५×६×६×४×३×२×२×१०=४३२०० भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त पांचों विकल्पों के भंगों के प्रमाण को जोड़ने पर (१४४०००+१४०४००+२१६०००+११२३२०+४३२००=६५५९२०) बारह बंध-प्रत्यय सम्बन्धी सर्व भंगों का प्रमाण छह लाख पचपन हजार नौ सौ बीस होता है।

अब तेरह बंधप्रत्यय और उनके भंगों को बतलाते हैं।

तेरह बंधप्रत्यय बनने के छह विकल्प हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकन्यास पूर्वक इनका प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+४+३+१+२+१=१३।

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार कुल मिलाकर तेरह बंध-प्रत्यय होते हैं। अंकों में उनका प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+३+४+१+२+१=१३।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादिक कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक, योग एक, इस प्रकार तेरह बंध-प्रत्यय होते हैं। जो अंकों में इस प्रकार से जानना चाहिये—

१+१+३+३+१+२+१+१=१३।

(घ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार भी तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। जिनकी अंकरचना इस प्रकार है—

१+१+२+४+१+२+१+१=१३।

(ङ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकों में प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+२+३+१+२+२+१=१३।

(च) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस तरह तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+१+४+१+२+२+१=१३।

उपर्युक्त तेरह बंधप्रत्ययों के छह विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ५×६×१५×४×३×२×१०=१०८००० भंग होते हैं।

(ख) ५×६×२०×४×३×२×१३=१८७२०० भंग होते हैं।

(ग) ५×६×२०×४×३×२×२×१०=२८८००० भंग होते हैं।

(घ) ५×६×१५×४×३×२×२×१३=२८०८०० भंग होते हैं।

(ङ) ५×६×१५×४×३×२×१०=१०८००० भंग होते हैं।

(च) ५×६×६×४×३×२×१३=५६१६० भंग होते हैं।

इन छहों विकल्पों के भंगों के प्रमाण को जोड़ देने पर तेरह बंधप्रत्ययों के कुल भंग (१०८०००+१८७२००+२८८०००+२८०८००+१०८०००+५६१६०=१०२८१६०) दस लाख अट्ठाईस हजार एक सौ साठ होते हैं।

अब चौदह बंधप्रत्ययों के विकल्पों और उनके भंगों को बतलाते हैं।

चौदह बंधप्रत्यय छह विकल्पों मे बनते हैं, जो इस प्रकार हैं—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार मिलकर कुल चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनको अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+५+३+१+२+१=१४।

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार से भी चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकों में जिनका रूप इस प्रकार है—

१+१+४+४+१+२+१=१४।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादिक कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार से चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनको अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+४+३+१+२+१+१=१४

(घ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि चार, वेद एक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और एक योग, इस प्रकार चौदह बंध-प्रत्यय होते हैं। अंकों में जिनका प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+३+४+१+२+१+१=१४।

(ङ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये कुल मिलाकर चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकन्यास इस प्रकार है—

१+१+३+३+१+२+२+१=१४।

(च) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकरचना इस प्रकार है—

१+१+२+४+१+२+२+१=१४।

उपर्युक्त छह विकल्पों के भंग इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) ५×६×६×४×३×२×१०=४३२०० भंग होते हैं।

(ख) ५×६×१५×४×३×२×१३=१४०४०० भंग होते हैं।

(ग) ५×६×१५×४×३×२×२×१०=२१६००० भंग होते हैं।

(घ) ५×६×२०×४×३×२×२×१३=३७४४०० भंग होते हैं।

(ङ) ५×६×२०×४×३×२×१०=१४४००० भंग होते हैं।

(च) ५×६×१५×४×३×२×१३=१४०४०० भंग होते हैं।

इन चौदह बंधप्रत्यय के छह विकल्पों के कुल मिलाकर (४३२००+१४०४००+२१६०००+३७४४००+१४४०००+१४०४००=१०५८४००) दस लाख अट्ठावन हजार चार सौ भंग होते है।

अब पन्द्रह बंधप्रत्ययों के विकल्प और उनके भंगों को बतलाते हैं।

पन्द्रह बंधप्रत्यय के छह विकल्प हैं। जो इस प्रकार हैं—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। जिनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+६+३+१+२+१=१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, कुल मिलाकर ये पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकसंदृष्टि इस प्रकार जानना चाहिए—

१+१+५+४+१+२+१=१५।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+५+३+१+२+१+१=१५।

(घ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार ये पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। अंकों में जिनका रूप इस प्रकार है—

१+१+४+४+१+२+१+१=१५।

(ङ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, कुल मिलाकर ये पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+४+३+१+२+२+१=१५।

(च) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये पन्द्रह बंधप्रत्यय हैं। इनकी अंकों में रचना इस प्रकार है—

१+१+३+४+१+२+२+१=१५।

उपर्युक्त पन्द्रह बंधप्रत्ययों के कुल विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ५×६×१×४×३×२×१०=७२०० भंग होते हैं।

(ख) ५×६×६×४×३×२×१३=५६१६० भंग होते हैं।

(ग) ५×६×६×४×३×२×२×१०=८६४०० भंग होते हैं।

(घ) ५×६×१५×४×३×२×२×१३=२८०८०० भंग होते हैं।

(ङ) ५×६×१५×४×३×२×१०=१०८००० भंग होते हैं।

(च) ५×६×२०×४×३×२×१३=१८७२०० भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पन्द्रह बंधप्रत्यय के छह विकल्पों के कुल मिलाकर (७२००+५६१६०+८६४००+२८०८००+१०८०००+१८७२००=७२५७६०) सात लाख पच्चीस हजार सात सौ साठ भंग होते हैं।

अब सोलह बंधप्रत्ययों के विकल्प और उनके भंगों को बतलाते हैं।

सोलह बंधप्रत्ययों के पांच विकल्प हैं। जो इस प्रकार बनते हैं—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+६+४+१+२+१=१६।

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल में से एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बंधहेतु होते हैं। इनकी अंकों में संदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+६+३+१+२+१+१=१६।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यदि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकों में इनका रूप इस प्रकार है—

१+१+५+४+१+२+१+१=१६।

(घ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार सोलह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+५+३+१+२+२+१=१६।

(ङ) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार सोलह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+४+४+१+२+२+१=१६।

इन सोलह बंधप्रत्ययों के पांचों विकल्पों के भंग इस प्रकार जानना चाहिये—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) ५×६×१×४×३×२×१३=९३६० भंग होते हैं।
(ख) ५×६×१×४×३×२×२×१०=१४४०० भंग होते हैं।
(ग) ५×६×६×४×३×२×२×१३=११२३२० भंग होते हैं।
(घ) ५×६×६×४×३×२×१०=४३२०० भंग होते हैं।
(ङ) ५×६×१५×४×३×२×१३=१४०४०० भंग होते है।

इन पांचों विकल्पों के सर्व भंगों का जोड़ (९३६०+१४४००+११२३२०+४३२००+१४०४००=३१९६८०) तीन लाख उन्नीस हजार छह सौ अस्सी होता है।

अब आगे सत्रह बंधप्रत्ययों के विकल्प और उनके भंगों को बतलाते हैं।

सत्रह बंधप्रत्ययों के तीन विकल्प इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार सत्रह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकसंदृष्टि के अनुसार उनका रूप इस प्रकार है—

१+१+६+४+१+२+१+१=१७।

(ख) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार ये सत्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+६+३+१+२+२+१=१७।

(ग) मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार सत्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+५+४+१+२+२+१=१७।

इन सत्रह बंधप्रत्ययों के तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार जानना चाहिए—

(क) ५×६×१×४×३×२×२×१३=१८७२० भंग होते हैं।
(ख) ५×६×१×४×३×२×१०=७२०० भंग होते हैं।
(ग) ५×६×६×४×३×२×१३=५६१६० भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीनों विकल्पों के सर्व भंगों का जोड़ (१८७२० + ७२०० + ५६१६० = ८२०८०) बयासी हजार अस्सी होता है।

अब अठारह बंधप्रत्यय और उनके भंग बतलाते हैं।

अठारह बंधप्रत्ययों का कोई विकल्प नहीं हैं। अतः यह एक ही प्रकार का है। इसमें गर्भित प्रत्ययों के नाम इस प्रकार हैं—

मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार अठारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकों में रचना इस प्रकार है—

१ + १ + ६ + ४ + १ + २ + २ + १ = १८।

इसके भंग इस प्रकार जानना चाहिए—

५ × ६ × १ × ४ × ३ × २ × १३ = ९३६० भंग होते हैं।

उपर्युक्त प्रकार से मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में दस से लेकर अठारह तक बंधप्रत्यय और उनके विकल्पों का विवरण है। इनके सर्व भंगों का विवरण इस प्रकार है—

१ दस बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—४३२००
२ ग्यारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—२५०५६०
३ बारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—६५५९२०
४ तेरह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—१०२८१६०
५ चौदह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—१०५८४००
६ पन्द्रह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—७२५७६०
७ सोलह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—३१९६८०
८ सत्रह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—८२०८०
९ अठारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग—९३६०

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान के इन सब बंधप्रत्ययों के भंगों का कुल जोड़ ४१७३१२० है।

इस प्रकार से मिथ्यात्वगुणस्थान के बंधप्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग जानना चाहिए। यहाँ और आगे भी बंधप्रत्ययों के भंगों को जानने सम्बन्धी करणसूत्र इस प्रकार जानना चाहिए—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरप्रत्ययों की अपेक्षा जो भंग-विकल्प ऊपर बताये हैं और आगे के गुणस्थानों में भी बताये जायेंगे, उनके लाने के लिए केवल काय-अविरति के भेदों की अपेक्षा गुणाकार रूप से संख्या-निर्देश करना पर्याप्त नहीं है, किन्तु उन काय-अविरति के भेदों के जो एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंग होते हैं, गुणाकार रूप से उन भंगों की संख्या-निर्देश करना आवश्यक है। तभी सर्व भंग-विकल्प प्राप्त होते हैं। इसी दृष्टि से ऊपर भंग निकालने के प्रसंग में काय-विराधना सम्बन्धी एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि के बनने वाले भंगों की संख्या का उल्लेख किया है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

कायविराधना सम्बन्धी एकसंयोगी आदि षटसंयोगी भंगों के गुणाकार त्रेसठ होते हैं। जो इस प्रकार से जानना चाहिए—जब कोई जीव क्रोधादि कषायों के वश होकर षट्कायिक जीवों में से एक-एक कायिक जीवों की विराधना करता है, तब एकसंयोगी छह भंग होते हैं। जब छह कायिकों में से किन्हीं दो-दो कायिक जीवों की विराधना करता है तब द्विसंयोगी पन्द्रह भंग होते हैं। इसी प्रकार किन्हीं तीन-तीन कायिक जीवों की विराधना करने पर त्रिसंयोगी भंग बीस, चार-चार की विराधना करने पर चतुःसंयोगी भंग पन्द्रह, पांच-पांच की विराधना करने पर पंचसंयोगी भंग छह होते हैं तथा एक साथ छहों कायिक जीवों की विराधना करने पर षट्संयोगी भंग एक होता है। इस प्रकार से उत्पन्न हुये एकसंयोगी आदि भंगों का योग त्रेसठ होता है। जिनका कायविराधना के प्रसंग में यथास्थान उल्लेख किया है और वैसा करने पर उन बंधप्रत्ययों के भंगों की पूरी संख्या प्राप्त होती है।

यद्यपि इन्द्रिय और वेद आदि का सामान्य से उन-उन बंधप्रत्ययों की संख्या में एक से उल्लेख किया है। लेकिन भंगों की पूरी संख्या लाने के लिए इन्द्रिय, वेद आदि की पूरी संख्या रखने पर ही सर्व भंग-विकल्प प्राप्त किये जाते हैं। अतः भंगों के प्रसंग में उनका उस रूप से निर्देश किया है।

इस प्रकार से मिथ्यात्वगुणस्थान के बंधप्रत्ययों और उनके भंगों तथा भंग प्राप्त करने की प्रक्रिया का निर्देश करने के अनन्तर अब दूसरे आदि शेष गुणस्थानों के बंधप्रत्ययों और उनके भंगों को बतलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनगुणस्थान—इस गुणस्थान में दस से लेकर सत्रह तक बंधप्रत्यय होते हैं। इस गुणस्थान की यह विशेषता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नरकगति में उत्पन्न नहीं होता है। इसलिए इस गुणस्थान वाले के यदि वैक्रियमिश्रकाययोग होगा तो देवगति की अपेक्षा से होगा। वहाँ नपुंसक वेद नहीं होता है, किन्तु स्त्रीवेद और पुरुषवेद होता है। अतएव बारह योगों के साथ तीन वेदों को जोड़कर भंगों की रचना होगी, किन्तु वैक्रियमिश्रकाययोग के साथ नपुंसकवेद को छोड़कर शेष दो वेदों की अपेक्षा भंगों की रचना होगी। इस विशेषता को बतलाने के बाद अब बंधप्रत्ययों और उनसे भंगों को बतलाते हैं।

सासादनगुणस्थान में जघन्य से दस बंधप्रत्यय होते हैं। परन्तु इस गुणस्थान वाले नरकगति में न जाने से यहाँ वैक्रियमिश्रकाययोग की अपेक्षा नपुंसकवेद सम्भव न होने से इसके भंगों के दो विकल्प इस प्रकार हैं—

इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार दस बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+४+१+२+१=१०।

इनके भंगों के लिए रचना दो प्रकार से होगी—

(क) ६×६×४×३×२×१२=१०३६८ भंग होते हैं। बारह योगों के साथ तीन वेदों को जोड़ने की अपेक्षा।

(ख) ६×६×४×२×२×१=५७६ भंग होते हैं। वैक्रियमिश्रकाययोग के साथ नपुंसकवेद छोड़कर।

इन दोनों का योग (१०३६८+५७६=१०९४४) दस हजार नौ सौ चवालीस है।

अब ग्यारह बंधप्रत्यय और उनके विकल्प तथा भंगों को बतलाते हैं।

ग्यारह बंधप्रत्ययों के दो विकल्प इस प्रकार जानना चाहिए—

(क) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+२+४+१+२+१=११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+४+१+२+१+१=११ ।

इन दोनों विकल्पों के भंग इस प्रकार है—

(क) ६×१५×४×३×२×१२=२५९२० भंग होते हैं।

६×१५×४×२×२×१=१४४० भंग होते हैं।

(ख) ६×६×४×३×२×२×१२=२०७३६ भंग होते हैं।

६×६×४×२×२×२×१=११५२ भंग होते हैं ?

इन ग्यारह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंगों का कुल जोड़ (२५९२०+१४४० +२०७३६+११५२=४९२४८) उनचास हजार दो सौ अड़तालीस होता है। इन दोनों विकल्पों के भंग ऊपर बताई गई विवक्षाओं की अपेक्षा हैं। इसी प्रकार आगे के बंधप्रत्ययों के विकल्पों के भंगों के लिये समझना चाहिये।

अब बारह बंधप्रत्ययों के विकल्पों और उनके भंगों को बतलाते हैं।

बारह बंधप्रत्ययों के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+३+४+१+२+१=१२ ।

(ख) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+२+४+१+२+१+१=१२ ।

(ग) इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय युगल और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय होते हैं। अंकरचनानुसार इनका प्रारूप इस प्रकार है—

१+१+४+१+२+२+१=१२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार है—

(क) ६×२०×४×३×२×१२=३४५६० भंग होते हैं।

६×२०×४×२×२×१=१९२० भंग होते हैं।

(ख) ६×१५×४×३×२×२×१२=५१८४० भंग होते हैं।

६×१५×४×२×२×२×१=२८८० भंग होते हैं।

(ग) ६×६×४×३×२×१२=१०३६८ भंग होते हैं।

६×६×४×२×२×१=५७६ भंग होते हैं।

इन बारह बंधप्रत्ययों के भंगों का कुल जोड़ (३४५६०+१९२०+५१८४०+२८८०+१०३६८+५७६=१०२११४) एक लाख दो हजार एक चौदह होता है।

अब तेरह बंधप्रत्यय के विकल्पों और भंगों को बतलाते हैं।

तेरह बंधप्रत्ययों के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+४+४+१+२+१=१३।

(ख) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+३+४+१+२+१+१=१३

(ग) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल, और योग एक, इस प्रकार तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में प्रारूप इस प्रकार है—

१+२+४+१+२+२+१=१३

इन तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१५×४×३×२×१२=२५९२० भंग होते हैं।

६×१५×४×२×२×१=१४४० भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) ६×२०×४×३×२×२×१२=६९१२० भंग होते हैं।

६×२०×४×२×२×२×१=३८४० भंग होते हैं।

(ग) ६×१५×४×३×२×१२=२५९२० भंग होते हैं।

६×१५×४×२×२×१=१४४० भंग होते हैं।

इन सब विकल्पों के भंगों का कुल योग (२५९२०+१४४०+६९१२० +३८४०+२५९२०+१४४०=१२७६८०) एक लाख सत्ताईस हजार छह सौ अस्सी होता है।

अब चौदह बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

चौदह बंधप्रत्ययों के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+५+४+१+२+१=१४।

(ख) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकरचना इस प्रकार जानना चाहिए।

१+४+४+१+२+१+१=१४।

(ग) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकरचना का प्रारूप इस प्रकार है—

१+३+४+१+२+२+१=१४।

इन चौदह बंधप्रत्ययों के विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×६×४×३×२×१२=१०३६८ भंग होते हैं।

६×६×४×२×२×१=५७६ भंग होते हैं।

(ख) ६×१५×४×३×२×२×१२=५१८४० भंग होते हैं।

६×१५×४×२×२×२×१=२८८० भंग होते हैं।

(ग) ६×२०×४×३×२×१२=३४५६० भंग होते हैं।

६×२०×४×२×२×१=१९२० भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन भंगों का कुल योग (१०३६८+५७६+५१८४०+२८८०+३४-५६०+१६२०=१०२१४४) एक लाख दो हजार एक सौ चवालीस होता है।

अब पन्द्रह बंधहेतु के विकल्पों और भंगों को बतलाते हैं।

पन्द्रह बंधहेतु के तीन विकल्प इस प्रकार जानना चाहिए—

(क) इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+६+४+१+२+१=१५।

(ख) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस तरह पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में रूप इस प्रकार है—

१+५+४+१+२+१+१=१५।

(ग) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये पन्द्रह बंधहेतु होते हैं। अंकों में इनको इस प्रकार जानना चाहिए—

१+४+४+१+२+२+१=१५।

इन विकल्पों के भंग इस प्रकार जानना चाहिए—

(क) ६×१×४×३×२×१२=१७२८ भंग होते हैं।

६×१×४×२×२×१=९६ भंग होते हैं।

(ख) ६×६×४×३×२×२×१२=२०७३६ भंग होते हैं।

६×६×४×२×२×२×१=११५२ भंग होते हैं।

(ग) ६×१५×४×३×२×१२=२५९२० भंग होते हैं।

६×१५×४×२×२×१=१४४० भंग होते हैं।

इन भंगों का कुल जोड़ (१७२८+९६+२०७३६+११५२+२५९२०+१४४०=५१०७२) इक्यावन हजार बहत्तर होता है।

अब सोलह बंधहेतु के विकल्पों और भंगों को बतलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलह बंधप्रत्यय के दो विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये सोलह बंधप्रत्यय होते हैं। इनके अंकों का प्रारूप इस प्रकार है—

१+६+४+१+२+१+१=१६।

(ख) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये सोलह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+५+४+१+२+२+१=१६।

इन दोनों विकल्पों के भंग इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) ६×१×४×३×२×२×१२=३४५६ भंग होते हैं।

६×१×४×२×२×२×१=१९२ भंग होते हैं।

(ख) ६×६×४×३×२×१२=१०३६८ भंग होते हैं।

६×६×४×२×२×१=५७६ भंग होते हैं।

इन विकल्पों के भंगों का कुल योग (३४५६+१९२+१०३६८+५७६ =१४५९२) चौदह हजार पांच सौ बानवै है।

अब सत्रह बंधहेतु बतलाते हैं। इनमें कोई विकल्प नहीं है।

सत्रह बंधहेतु इस प्रकार हैं—

इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये सत्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+६+४+१+२+२+१=१७।

इसके भंग इस प्रकार जानना चाहिये—

६×१×४×३×२×१२=१७२८ भंग होते हैं।

६×१×४×२×२×१=९६ भंग होते हैं।

इनका कुल योग (१७२८+९६=१८२४) अठारह सौ चौबीस होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से सासादनगुणस्थान सम्बन्धी दस से लेकर सत्रह तक के बंध प्रत्ययों के कुल भंग और उनके जोड़ का प्रमाण इस प्रकार है—

१. दस बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = १०९४४
२. ग्यारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = ४९२४८
३. बारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = १०२१४४
४. तेरह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = १२७६८०
५. चौदह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = १०२१४४
६. पन्द्रह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = ५१०७२
७. सोलह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = १४४९२
८. सत्रह बँधप्रत्यय सम्बन्धी भंग = १८२४

इन सब भंगों का कुल जोड़ ४५९६४८ होता है।

मिश्रगुणस्थान—इस गुणस्थान में नौ से लेकर सोलह तक बंधप्रत्यय होते हैं। इस गुणस्थान में अपर्याप्त काल सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण काययोग, ये तीन योग न होने से तथा आहारद्विक योग यहाँ होते ही नहीं, इसलिये केवल दस योग प्रत्ययों के रूप में ग्रहण किये जायेंगे।

जघन्य से मिश्रगुणस्थान में इन्द्रिय एक, काय एक, अनन्तानुबंधी के बिना अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन सम्बन्धी क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये नौ बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+३+१+२+१=९।

इनके भंग ६×६×४×३×२×१०=८६४० होते हैं।

दस बंधप्रत्यय के दो विकल्प हैं। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

(क) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये दस बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में रूप इस प्रकार है—

१+२+३+१+२+१=१०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस तरह दस बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+३+१+२+१+१=१०।

इन दोनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१५×४×३×२×१०=२१६०० भंग होते हैं।

(ख) ६×६×४×३×२×२×१०=१७२८० भंग होते हैं।

इन दोनों का कुल जोड़ (२१६००+१७२८०=३८८८०) अड़तीस हजार आठ सौ अस्सी है।

ग्यारह बंधप्रत्यय के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक. ये ग्यारह बंध प्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+३+३+१+२+१=११।

(ख) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार जानना चाहिये—

१+२+३+१+२+१+१=११।

(ग) इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक और योग एक, ये ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में रूप इस प्रकार है—

१+१+३+१+२+२+१=११।

इन ग्यारह बंध प्रत्ययों सम्बन्धी तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×२०×४×३×२×१०=२८८०० होते हैं।

(ख) ६×१५×४×३×२×२×१०=४३२०० होते हैं।

(ग) ६×६×४×३×२×१०=८६४० होते हैं।

इनका कुल योग (२८८००+४३२००+८६४०=८०६४०) अस्सी हजार छह सौ चालीस है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब बारह बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

बारह बंधप्रत्ययों के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+४+३+१+२+१=१२।

(ख) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+३+३+१+२+१+१=१२।

(ग) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+२+३+१+२+२+१=१२।

इन तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१५×४×३×२×१०=२१६०० होते हैं।

(ख) ६×२०×४×३×२×२×१०=५७६०० होते हैं।

(ग) ६×१५×४×३×२×१०=२१६०० होते हैं।

इन तीनों विकल्पों के भंगों का कुल योग (२१६००+५७६००+२१६०० =१००८००) एक लाख आठ सौ होता है।

तेरह बंधप्रत्यय के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+५+३+१+२+१=१३।

(ख) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१+४+३+१+२+१+१=१३ ।

(ग) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल, योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+३+३+१+२+२+१=१३ ।

इन तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×६×४×३×२×१०=८६४० भंग होते हैं।

(ख) ६×१५×४×३×२×२×१०=४३२०० भंग होते हैं।

(ग) ६×२०×४×३×२×१०=२८८०० भंग होते हैं।

इन तीनों विकल्पों के कुल भंगों का जोड़ (८६४०+४३२००+२८८०० =८०६४०) अस्सी हजार छह सौ चालीस होता है।

अब चौदह बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

(क) इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+६+३+१+२+१=१४ ।

(ख) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय हैं। इनका अंकों में रूप इस प्रकार जानना चाहिए—

१+५+३+१+२+१+१=१४ ।

(ग) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+४+३+१+२+२+१=१४ ।

इन तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१×४×३×२×१०=१४४० भंग होते हैं।

(ख) ६×६×४×३×२×१×१०=१७२८० भंग होते हैं।

(ग) ६×१५×४×३×२×१०=२१६०० भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीनों विकल्पों के कुल भंगों का जोड़ (१४४० + १७२८० + २१६०० = ४०३२०) चालीस हजार तीन सौ बीस है।

अब पन्द्रह बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

पन्द्रह बंधप्रत्ययों के दो विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक, और योग एक ये पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार जानना चाहिए—

१ + ६ + ३ + १ + २ + १ + १ = १५।

(ख) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये पन्द्रह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि का रूप इस प्रकार है—

१ + ५ + ३ + १ + २ + २ + १ = १५।

इन दोनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६ × १ × ४ × ३ × २ × २ × १० = २८८० भंग होते हैं।

(ख) ६ × ६ × ४ × ३ × १ × १० = ८६४० भंग होते हैं।

इन दोनों विकल्पों के कुल भंगों का कुल जोड़ (२८८० + ८६४० = ११५२०) ग्यारह हजार पांच सौ बीस है।

अब सोलह बंधप्रत्यय बतलाते हैं।

मिश्र गुणस्थान में इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये सोलह बंधप्रत्यय होते है। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१ + ६ + ३ + १ + २ + २ + १ = १६।

इनके भंग इस प्रकार है—

६ × १ × ४ × ३ × २ × १० = १४४० भंग होते हैं।

मिश्रगुणस्थान में नौ से सोलह तक के बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का प्रमाण का विवरण और जोड़ इस प्रकार है—

१ नौ बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ८६४० हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ दस बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ३८८८० हैं।
३ ग्यारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ८०६४० हैं।
४ बारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग १००८०० हैं।
५ तेरह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ८०६४० हैं।
६ चौदह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ४०३२० हैं।
७ पन्द्रह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ११५२० हैं।
८ सोलह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग १४४० हैं।

इन सर्व बंधप्रत्ययों के भंगों का जोड़ (३६२८८०) तीन लाख बासठ हजार आठ सौ अस्सी है।

४ **अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान**—इस गुणस्थान में नौ से सोलह तक बंधप्रत्यय होते हैं। इस गुणस्थान के बंधप्रत्ययों और उनके भंगों के विषय में यह विशेषता जानना चाहिए कि मिश्रगुणस्थान में दस योगों की अपेक्षा जो बंधप्रत्यय और उनके भंग कहे हैं, अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में अपर्याप्त काल सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण काययोग से अधिक वे ही प्रत्यय और भंग जानना चाहिये। इसका कारण यह है कि इस गुणस्थान में अपर्याप्तकाल में देव और नारकों की अपेक्षा वैक्रियमिश्र और कार्मण काययोग तथा बद्धायुष्क तिर्यंचों और मनुष्यों की अपेक्षा औदारिकमिश्र काययोग सम्भव है। अतएव दस के स्थान पर तेरह योगों से बंध होता है। जिससे भंगसंख्या भी योग गुणाकार के बढ़ जाने से बढ़ जाती है।

इसके सिवाय दूसरी विशेषता यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती जीव यदि बद्धायुष्क नहीं है तो उसके वैक्रियमिश्र और कार्मण काययोग देवों में ही मिलेंगे तथा उनके केवल पुरुषवेद ही सम्भव है। यदि बद्धायुष्क है तो वह नरकगति में भी जायेगा और उसके वैक्रियमिश्रकाययोग के साथ नपुंसकवेद भी रहेगा। इसलिये इस गुणस्थान के भंगों को उत्पन्न करने के लिये तीन वेदों से, दो वेदों से और एक वेद से गुणा करना चाहिए तथा पर्याप्त काल में सम्भव दस योगों से और अपर्याप्त काल में सम्भव दो योगों से और एक योग से भी गुणा करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सब विशेषताओं को ध्यान में रखकर अब अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान के बंधप्रत्यय, उनके विकल्पों और भंगों को बतलाते हैं।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में जघन्य से नौ बंधप्रत्यय होते हैं। उनके ये भंग हैं—

इन्द्रिय एक, काय एक, कषाय एक, वेद तीन, हास्ययुगल एक, योग एक ये नौ बंधप्रत्यय हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार जानना चाहिये—

१+१+१+३+२+१=९। अथवा

इन्द्रिय एक, काय एक, कषाय तीन, वेद एक, हास्ययुगल एक और योग एक, ये नौ बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+३+१+२+१=९।

इन नौ प्रत्ययों के भंग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं। नपुसंक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४=(१४४)×१×२×१=२८८।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×६×४=(१४४)×२×२×२ =११५२।

तीन वेद और दस योगों की अपेक्षा ६×६×४=(१४४)३×२×१०=८६४०।

इन सब भंगों का जोड़ (२८८+११५२+८६४०=१००८०) दस हजार अस्सी है।

अब दस आदि बंधप्रत्ययों के भंग बतलाते हैं। मिश्र गुणस्थान के समान ही दस आदि बंधप्रत्ययों में प्रत्ययों की संख्या और उनके विकल्पों को जानना चाहिए। किन्तु ऊपर बताई गई विशेषता के अनुसार इस अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंधप्रत्ययों के भंगों में अन्तर पड़ जाता है। अतः उसी विशेषता के अनुसार दस से सोलह तक के बंधप्रत्ययों के भंगों को बतलाते हैं।

दस बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(क) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×१×२×१=७२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×२×२×२=२८८०।

(ख) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×१×२×२×१=५७६।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×२×२×२×२=२३०४।

(ग) तीनों वेद और दस योगों की अपेक्षा दोनों प्रकार के उत्पन्न भंग—२१६००+१७२८०=३८८८०।

दस बंधप्रत्यय सम्बन्धी इन सर्व भंगों का जोड़ (७२०+२८८०+५७६+२३०४+३८८८०=४५३६०) पैंतालीस हजार तीन सौ साठ है।

ग्यारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(क) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×२०×४(=४८०)×१×२×१=९६०।

दो वेद और दो योग की अपेक्षा ६×२०×४(=४८०)×२×२×२=३८४०।

(ख) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×१×२×२×१=१४४०।

दो वेद और दो योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×२×२×२×२=५७६०।

(ग) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×१×२×१=२८८।

दो वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×२×२×१=११५२।

तीनों वेद और दस योगों की अपेक्षा तीनों प्रकार से उत्पन्न भंग २८८००+४३२००+८६४०=८०६४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारह बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का कुल जोड़ (९६०+३८४०+१४४०+५७६०+२८८+११५२+८०६४०=९४०८०) चौरानवै हजार अस्सी होता है।

अब बारह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग बतलाते हैं--

(क) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×१×२×१=७२०।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×२×२×२=२८८०।

(ख) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×२०×४(=४८०)×१×२×२×१=१९२०।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×२०×४(=४८०)×२×२×२×२=७६८०।

(ग) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×१×२×१=७२०।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×१५×४ (=३६०)×२×२×२=२८८०।

तीनों वेद और दस योगों की अपेक्षा से उत्पन्न भंग २१६००+५७६००+२१६००=१०८०००।

बारह बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का कुल जोड़ (७२०+२८८०+१९२०+७६८०+७२०+२८८०+१०८०००=११७६००) एक लाख सत्रह हजार छह सौ होता है।

अब तेरहं बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग बतलाते हैं—

(क) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×१×२×१=२८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×२×२×२ =११५२ ।

(ख) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×१×२×२×१=१४४० ।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×२×२×२×२=५७६० ।

(ग) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×२०×४ (=४८०)×१×२×१=९६० ।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×२०×४(=४८०)×२×२×२=३८४० ।

तीनों वेद और दस योगों की अपेक्षा तीनों प्रकार से उत्पन्न भंग ८६४०+४३२००+२८८०० = ८०६४० ।

तेरह बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का कुल जोड़ (२८८+११५२+१४४०+५७६०+९६०+३८४०+८०६४=९४०८०) चौरानवें हजार अस्सी है ।

अब चौदह बंधप्रत्ययों के भंगों को बतलाते हैं—

(क) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१×०(=२४)×१×२×१=४८ ।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×१×४(=२४)×२×२×२ =१९२ ।

(ख) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×१×२×२×१=५७६ ।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×२×२×२×२=२३०४ ।

(ग) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×१×२×१=७२० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×१५×४(=३६०)×२×२×२=२८८०।

तीनों वेद और दस योगों की अपेक्षा तीनों प्रकार से उत्पन्न भंग १४४०+१७२८०+२१६००=४०३२०।

चौदह बंधप्रत्ययों के कुल भंगों का जोड़ ४८+१९२+५७६+२३०४+७२०+२८८०+४०३२०=४७०४०) सैंतालीस हजार चालीस होता है।

अब पन्द्रह बंधप्रत्ययों के भंगों को बतलाते हैं—

(क) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×१×४(=२४)×१×२×२×१=९६।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा ६×१×४(=२४)×२×२×२×२=३८४।

(ख) एक वेद और एक योग की अपेक्षा ६×६×४(=१४४)×१×२×१=२८८।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा—६×६×४(=१४४)×२×२×२=११५२।

तीनों वेद और दस योगों की अपेक्षा दोनों प्रकारों से उत्पन्न भंग—२८८०+८६४०=११५२०।

पन्द्रह बंधहेतुओं के कुल भंगों का जोड़ (९६+३८४+२८८+११५२+११५२०=१३४४०) तेरह हजार चार सौ चालीस होता है।

अब सोलह बंधप्रत्ययों के भंगों को बतलाते हैं—

एक वेद और एक योग की अपेक्षा=६×१×४(=२४)×१×२×१=४८।

दो वेद और दो योगों की अपेक्षा—६×१×४(=२४)×२×२×२=१९२।

तीन वेद और दस योगों की अपेक्षा=६×१×४(=२४)×३×२×१०=१४४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलह बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का जोड़ (४८+१९२+१४४०=१६८०) सोलह सौ अस्सी है।

इस प्रकार अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान में नौ से लेकर सोलह तक के बंधप्रत्ययों के सर्व भंगों का विवरण और कुल योग इस प्रकार जानना चाहिये—

१. नौ बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	१००८०
२. दस बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	४५३६०
३. ग्यारह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	९४०८०
४. बारह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	११७६००
५. तेरह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	९४०८०
६. चौदह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	४७०४०
७. पन्द्रह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	१३४४०
८. सोलह बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंग	१६८०

इन सर्व भंगों का कुल जोड़ (४२३३६०) चार लाख तेईस हजार तीन सौ साठ है।

(५) **देशविरतगुणस्थान**—इस गुणस्थान में आठ से चौदह तक बंधप्रत्यय होते हैं तथा त्रसकाय का वध यहाँ नहीं होने से पृथ्वी आदि वनस्पति पर्यन्त पांच स्थावरकाय अविरति होती है। अतएव पूर्व में बताये गये संयोगी भंगों के करणसूत्र के अनुसार एक संयोगी पांच, द्विसंयोगी दस, त्रिसंयोगी दस, चतुःसंयोगी पांच और पंचसंयोगी एक भंग होता है। जिनका उल्लेख काय के प्रसंग में एक दो आदि करके सम्भव भंग बनाना चाहिये।

देशविरतगुणस्थान में आठ बंधप्रत्यय इस प्रकार हैं—

इन्द्रिय एक, काय एक, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये आठ बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+१+२+१=८।

इनके भंग ६×५×४×३×२×९=६४८० होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब नौ बंधप्रत्ययों सम्बन्धी भंगों को बतलाते हैं—

नौ बंधप्रत्यय के दो विकल्प हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये नौ बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+२+२+१+२+१=९।

(ख) इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, इस प्रकार नौ बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+१+२+१+१=९।

इन विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१०×४×३×२×९=१२९६० भंग होते हैं।

(ख) ६×५×४×३×२×२×९=१२९६० भंग होते हैं।

इन दोनों विकल्पों के कुल भंगों का जोड़ (१२९६०+१२९६०=२५९२०) पच्चीस हजार नौ सौ बीस होता है।

अब दस बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

दस बंधप्रत्यय के तीन विकल्प हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये दस बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में रूप इस प्रकार है—

१+३+२+१+२+१=१०।

(ख) इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये दस बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकों में रचना इस प्रकार है—

१+२+२+१+२+१+१=१०।

(ग) इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक और योग एक, ये दस बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१+१+२+१+२+२+१=१०।

उक्त तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१०×४×३×२×९=१२९६० भंग होते हैं।

(ख) ६×१०×४×३×२×२×९=२५९२० भंग होते हैं।

(ग) ६×५×४×३×२×९=६४८० भंग होते हैं।

इन तीनों विकल्पों के कुल भंगों का जोड़ (१२९६०+२५९२०+६४८०=४५३६०) पैंतालीस हजार तीन सौ साठ है।

अब ग्यारह बंधप्रत्यय, उनके विकल्पों व भंगों को बतलाते हैं।

ग्यारह बंधप्रत्यय के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय चार. क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+४+२+१+२+१=११।

(ख) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनका अंकों में रूप इस प्रकार है—

१+३+२+१+२+१+१=११।

(ग) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक और योग एक, इस प्रकार ग्यारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+२+२+१+२+२+१=११।

उपर्युक्त ग्यारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×५×४×३×२×९=६४८० भंग होते हैं।

(ख) ६×१०×४×३×२×९=२५९२० भंग होते हैं।

(ग) ६×१०×४×३×२×९=१२९६० भंग होते हैं।

इन सब भंगों का कुल जोड़ (६४८०+२५९२०+१२९६०=४५३६०) पैंतालीस हजार तीन सौ साठ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब बारह बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

बारह बंधप्रत्ययों के तीन विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकरचना इस प्रकार है—

१+५+२+१+२+१=१२।

(ख) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+४+२+१+२+१+१=१२।

(ग) इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये बारह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+३+२+१+२+२+१=१२।

इन तीनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१×४×३×२×९=१२९६ भंग होते हैं।

(ख) ६×५×४×३×२×२×९=१२९६० भंग होते हैं।

(ग) ६×१०×४×३×२×९=१२९६० भंग होते हैं।

इन तीनों विकल्पों के कुल भंगों का जोड़ (१२९६+१२९६०+१२९६० =२७२१६) सत्ताईस हजार दो सौ सोलह होता है।

अब तेरह बंधप्रत्यय, उनके विकल्प और भंगों को बतलाते हैं।

तेरह बंधप्रत्ययों के दो विकल्प इस प्रकार हैं—

(क) इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक में से एक और योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+५+२+१+२+१+१=१३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये तेरह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक-संदृष्टि इस प्रकार है—

१+४+२+१+२+२+१=१३।

उक्त दोनों विकल्पों के भंग इस प्रकार हैं—

(क) ६×१×४×३×२×२×९=२५९२ भंग होते हैं।

(ख) ६×५×४×३×२×९=६४८० भंग होते हैं।

इन दोनों विकल्पों के भंगों का कुल जोड़ (२५९२+६४८०=९०७२) नौ हजार बहत्तर होता है।

अब चौदह बंधप्रत्यय और उनके भंग बतलाते हैं।

इन्द्रिय एक, काय पांच, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, ये चौदह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+५+२+१+२+२+१=१४।

इनके भंग इस प्रकार हैं—६×१×४×३×२×९=१२९६।

देशविरतगुणस्थान के आठ से चौदह तक के बंधप्रत्ययों के भंग इस प्रकार हैं—

१. आठ बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ६४८० होते हैं।

२. नौ बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग २५९२० होते हैं।

३. दस बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ४५३६० होते हैं।

४. ग्यारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ४५३६० होते हैं।

५. बारह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग २७२१६ होते हैं।

६. तेरह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ९०७२ होते हैं।

७. चौदह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग १२९६ होते हैं।

इन सर्व भंगों का जोड़ (१६०७०४) एक लाख साठ हजार सात सौ चार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से देशविरतगुणस्थान के बंधप्रत्ययों और उनके भंगों का विवरण जानना चाहिये। अब प्रमत्तसंयतगुणस्थान के बंधप्रत्ययों का विचार करते हैं।

६. **प्रमत्तसंयतगुणस्थान**—इस गुणस्थान में पांच, छह और सात ये तीन बंधप्रत्यय होते हैं। इस गुणस्थान की यह विशेषता है कि अप्रशस्त वेद के उदय में आहारकऋद्धि उत्पन्न नहीं होने से आहारककाययोगद्विक की अपेक्षा केवल एक पुरुषवेद होता है, इतर दोनों वेद (स्त्रीवेद, नपुंसकवेद) नहीं होते हैं। इस सूत्र के अनुसार यहाँ बंधप्रत्यय जानना चाहिये।

प्रमत्तसंयतगुणस्थान में कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल और (मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिककाययोग इन नौ योगों में से) एक योग, ये पांच बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+१=५।

इनके भंग ४×३×२×९=२१६ होते हैं। किन्तु आहारकद्विक की अपेक्षा इनके भंग ४×१×२×२=१६ होते हैं। इन दोनों को मिलाने पर कुल भंग (२१६+१६=२३२) दो सौ बत्तीस जानना चाहिए।

अब छह बंधप्रत्ययों के भंगों को बतलाते हैं—

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि एकयुगल, भयद्विक में से कोई एक और योग एक, ये छह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+१+१=६।

इनके भंग ४×३×२×२×९=४३२ होते हैं तथा आहारकद्विक की अपेक्षा इनके भंग ४×१×२×२×२=३२ होते हैं। इन दोनों का कुल जोड़ (४३२+३२=४६४) चार सौ चौंसठ है।

अब सात बंधप्रत्यय और उनके भंगों को बतलाते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल, भययुगल और एक योग, इस तरह सात बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंक संदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+२+१=७।

इनके भंग=४×३×२×९=२१६ होते हैं तथा आहारकद्विक योग की अपेक्षा इनके भंग ४×१×२×२=१६ होते हैं।

इन दोनों का जोड़ (२१६+१६=२३२) दो सौ बत्तीस है।

इन तीनों प्रकार के बंधप्रत्ययों के भंगों का कुल जोड़ इस प्रकार जानना चाहिए—

१. पांच बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग २३२ होते हैं।
२. छह बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग ४६४ होते हैं।
३. सात बंधप्रत्यय सम्बन्धी भंग २३२ होते हैं।

इन सब भंगों का कुल जोड़ (९२८) नौ सौ अट्ठाईस है।

अब अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थान सम्बन्धी बंधप्रत्ययों और उनके भंगों को बतलाते हैं।

७-८. **अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण गुणस्थान**—इन दोनों गुणस्थानों में भी प्रमत्तसंयत गुणस्थान के समान ही पांच, छह और सात ये तीन प्रकार के बंधप्रत्यय हैं। किन्तु ये तीनों आहारकद्विक के बिना समझना चाहिए। अतएव इनके भंग इस प्रकार हैं—

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि एक-युगल और एक योग, ये पांच बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+१=५।

इनके भंग ४×३×२×९=२१६ होते हैं।

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युगल, भयद्विक में से कोई एक और योग एक, ये छह बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार हैं—

१+१+२+१+१=६।

इनके भंग ४×३×२×२×९=४३२ होते हैं।

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्यादि युगल, भययुगल और एक योग, ये सात बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+२+२+१=७।

इनके भंग ४×३×२×९=२१६ होते हैं।

इन तीनों बंधप्रत्ययों के कुल भंगों का जोड़ (२१६+४३२+२१६=८६४) आठ सौ चौंसठ है।

अब अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान के बंधप्रत्यय और उनके भंगों को बतलाते हैं।

९. **अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान**—इस गुणस्थान में तीन और दो बंधप्रत्यय होते हैं। इसका कारण यह है कि इस गुणस्थान के सवेद और अवेद ये दो विभाग हैं। अतएव सवेदभाग की अपेक्षा तीन और अवेदभाग की अपेक्षा दो बंधप्रत्यय जानना चाहिए।

सवेदभाग में चारों संज्वलन कषाय, तीनों वेद और नौ योगों में से कोई एक-एक होने से तीन बंधप्रत्यय होते हैं। अथवा नपुंसकवेद को छोड़कर शेष दो वेदों में से कोई एक वेद अथवा केवल पुरुषवेद होता है।

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१+१=३।

इनके भंग इस प्रकार हैं—

४+३+९=१०८ भंग होते हैं।
४+२+९=७२ भंग होते हैं।
४+१+९=३६ भंग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सर्व भंगों का कुल जोड़ (१०८+७२+३६=२१६) दो सौ सोलह है।

अवेदभाग की अपेक्षा नौवें गुणस्थान में चारों संज्वलनों में से कोई एक कषाय तथा नौ योगों में से कोई एक योग, ये दो बंधप्रत्यय होते है। अथवा क्रोध को छोड़कर शेष तीन में से एक, मान को छोड़कर शेष दो में से एक और माया को छोड़कर केवल संज्वलन लोभ यह एक कषाय होती है। इस प्रकार एक संज्वलन कषाय और एक योग ये दो जघन्य बंधप्रत्यय होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१+१=२।

इनके भंग इस प्रकार जानना चाहिए—

४×९=३६ भंग होते हैं।

३×९=२७ भंग होते हैं।

२×९=१८ भंग होते हैं।

१×९=९ भंग होते हैं।

इस प्रकार दो बंधप्रत्यय सम्बन्धी सर्वभंगों का कुल जोड़ (३६+२७+१८+९=९०) नब्बे होता है।

तीन प्रत्यय सम्बन्धी २१६ और दो प्रत्यय सम्बन्धी ९० भंगों को मिलाने पर अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थान में (२१६+९०=३०६) तीन सौ छह भंग होते हैं।

अब सूक्ष्मसंपराय आदि सयोगि केवलीगुणस्थान पर्यन्त के बंधप्रत्यय और उनके भंग बतलाते हैं।

१०. **सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान**—इस गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ और नौ योगों में से कोई एक योग, ये दो बंधप्रत्यय होते हैं।

११, १२. **उपशांतमोह एवं क्षीणमोह गुणस्थान**—इन दोनों गुणस्थानों में योग रूप बंधप्रत्यय होने से उत्तर प्रत्यय के रूप में नौ योगों में से कोई एक योग रूप एक ही बंधप्रत्यय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. **सयोगिकेवली गुणस्थान**—यहाँ भी योग रूप बंधप्रत्यय होने से यहाँ पाये जाने वाले सात योगों में से कोई एक योगरूप एक ही बंधप्रत्यय होता है तथा योग का भी अभाव हो जाने से अयोगि केवली गुणस्थान में कोई भी बंध-प्रत्यय नहीं होता है।

सूक्ष्मसंपराय आदि सयोगिकेवली पर्यन्त गुणस्थानों के बंधप्रत्ययों के भंग इस प्रकार हैं—

सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में २ × १ × ९ = १८ भंग होते हैं।

उपशांत, क्षीण मोह गुणस्थान में १ × ९ = ९ भंग होते हैं।

सयोगिकेवलीगुणस्थान में १ × ७ = ७ भंग होते हैं।

इस प्रकार तेरह गुणस्थानों में बंधप्रत्यय, विकल्प और उनके भंगों को जानना चाहिए।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधहेतु-प्ररूपणा अधिकार की गाथा–अकाराद्यनुक्रमणिका

गाथांश	गा. सं./पृ. सं.	गाथांश	गा. सं./पृ. सं.
अणउदयरहिय मिच्छे	१०।४१	दो रूवाणि पमत्ते	१३।७३
आभिग्गहियमणाभिग्गहं	२।६	निसेज्जा जायणाकोसो	२३।११८
इच्चेसिमेगगहणे	८।२४	पणपन्न पन्न तियछहिय	५।१४
उरलेण तिन्नि छण्हं	१८।८६	बंधस्समिच्छ अविरइ	१।३
एवं च अपज्जाणं	१७।८७	मिच्छत्त एक्कायादिघाय	७।२०
खुपिपासुण्हसीयाणि	२१।११४	मिच्छत्तं एगं चिय	१६।८३
चउ पच्चइओ मिच्छे	४।११	वेयणीयभवा एए	२२।११८
चत्तारि अविरए चय	१२।५७	सव्वगुणठाणगेसु	१४।८१
छक्कायवहो मणइंदियाण	३।९	सासायणम्मि रूवं चय	११।४२
जा बादरो ता घाओ	९।२६	सोलसट्ठारस हेऊ	१५।८२
तित्थयराहाराणं	२०।१०९	सोलस मिच्छ निमित्ता	१९।१०७
दस-दस नव-नव अड पंच	६।१८		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१-६. **कर्मग्रन्थ** [भाग १—६] सम्पूर्ण सेट : मूल्य ७५)

जैनदर्शन की मूल कुञ्जी है—कर्म सिद्धान्त ! कर्म सिद्धान्त को सम्यक्रूप में समझने पर ही जैनदर्शन का हार्द समझा जा सकता है। कर्म-सिद्धान्त का सुन्दर व अत्यन्त प्रामाणिक विवेचन पढ़िए।

कर्मग्रन्थ—

मूल रचयिता : श्रीमद् देवेन्द्रसूरि

व्याख्याकार : श्री मरुधरकेसरी मिश्रीमलजी महाराज

सम्पादक : श्रीचन्द सुराना : देवकुमार जैन

७. **जैनधर्म में तप : स्वरूप और विश्लेषण : मूल्य : १०)**

(तप के सर्वांगीण स्वरूप पर शास्त्रीय विवेचन। तप सम्बन्धी अनेक चित्र)

८-१६. **प्रवचन साहित्य—**

१. प्रवचन प्रभा ५)

२. धवल ज्ञान धारा ५)

३. जीवन ज्योति ५)

४. प्रवचन सुधा ५)

५. साधना के पथ पर ५)

६. मिश्री की डलियाँ १२)

७. मित्रता की मणियाँ १५)

८. मिश्री विचार वाटिका २०)

९. पर्युषण पर्व संदेश १५)

१७-२६. **उपदेश साहित्य—**

सप्त व्यसन पर आठ महत्वपूर्ण लघु पुस्तिकाएँ

१८. **सात्विक और व्यसन मुक्त जीवन १)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९-१. विपत्तियों की जड़ : जुआ १)
२०-२. मांसाहार : अनर्थों का कारण १)
२१-३. मानव का शत्रु : मद्यपान १)
२२-४. वेश्यागमन : मानव जीवन का कोढ़ १)
२३-५. शिकार : पापों का स्रोत १)
२४-६. चोरी : अनैतिकता की जननी १)
२५-७. परस्त्री-सेवन : सर्वनाश का मार्ग १)
२६. जीवन सुधार (संयुक्त जिल्द) ८)
२७-३६. सुधर्म प्रवचन माला (दस धर्म पर १० पुस्तकें) प्रत्येक ६)
३७-३९. **काव्य साहित्य :**
३७. जैन राम-यशोरसायन १५)
३८. जैन पांडव-यशोरसायन ३०)
(नवीन परिवर्द्धित तुलनात्मक भूमिका व परिशिष्ट युक्त)
३९. तकदीर की तस्वीर (काव्य)

उपन्यास व कहानी-साहित्य—

४०. सांझ सबेरा ४)
४१. भाग्य क्रीड़ा ४)
४२. धनुष और बाण ५)
४३. एक म्यान : दो तलवार ४)
४४. किस्मत का खिलाड़ी ४)
४५. बीज और वृक्ष ४)
४६. फूल और पाषाण ५)
४७. तकदीर की तस्वीर ४)
४८. शील सौरभ ५)
४९. भविष्य का भानु ५)

अन्य साहित्य—

५०. विश्व बन्धु महावीर १)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. तीर्थंकर महावीर १०)
५२. संकल्प और साधना के धनी : श्री मरुधर केसरी मिश्रीमल जी महाराज २५)
५३. दशवैकालिक सूत्र (पद्यानुवाद) १५)
५४. श्रमणकुलतिलक आचार्य श्री रघुनाथजी महाराज २५)
५५. मिश्री काव्य कल्लोल (कविता-भजन संग्रह) २५)
प्रथम तरंग १५)
द्वितीय तरंग १०)
तृतीय तरंग १०)

सम्पर्क करें :

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार,
पो० ब्यावर (राजस्थान)

पंचसंग्रह

□ □

[भाग १ से १० तक शीघ्र
प्रकाशित हो रहे हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृति-संकेत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृति-संकेत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org